

रामचर्चा प्रेमचंद

अनुक्रम

- अध्याय 1
- अध्याय 2
- अध्याय 3
- अध्याय 4
- अध्याय 5
- अध्याय 6
- अध्याय 7

[अनुक्रम](#)

अध्याय 1

[आगे](#)

जन्म

प्यारे बच्चो! तुमने विजयदशमी का मेला तो देखा ही होगा। कहींकहीं इसे रामलीला का मेला भी कहते हैं। इस मेले में तुमने मिट्टी या पीतल के बन्दरों और भालुओं के से चेहरे लगाये आदमी देखे होंगे। राम, लक्ष्मण और सीता को सिंहासन पर बैठे देखा होगा और इनके सिंहासन के सामने कुछ फासले पर कागज और बांसों का बड़ा पुतला देखा होगा। इस पुतले के दस सिर और बीस हाथ देखे होंगे। वह रावण का पुतला है। हजारों बरस हुए, राजा रामचन्द्र ने लंका में जाकर रावण को मारा था। उसी कौमी फतह की यादगार में विजयदशमी का मेला होता है और हर साल रावण का पुतला जलाया जाता है। आज हम तुम्हें उन्हीं राजा रामचन्द्र की जिंदगी के दिलचस्प हालात सुनाते हैं।

गंगा की उन सहायक नदियों में, जो उत्तर से आकर मिलती हैं, एक सरजू नदी भी है। इसी नदी पर अयोध्या का मशहूर कस्बा आबाद है। हिन्दू लोग आज भी वहां तीर्थ करने जाते हैं। आजकल तो अयोध्या एक छोटासा कस्बा है; मगर कई हजार साल हुए, वह हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा शहर था। वह सूर्यवंशी खानदान के नामीगिरामी राजाओं की राजधानी थी। हरिश्चन्द्र जैसे दानी, रघु जैसे गरीब परवर, भगीरथ जैसे वीर राजा इसी सूर्यवंश में हुए। राजा दशरथ, इसी परसिद्ध वंश के राजा थे। रामचन्द्र राजा दशरथ के बेटे थे।

उस जमाने में अयोध्या नगरी विद्या और कला की केन्द्र थी। दूरदूर के व्यापारी रोजगार करने आते थे। और वहां की बनी हुई चीजें खरीदकर ले जाते थे। शहर में विशाल सड़कें थीं। सड़कों पर हमेशा छिड़काव होता था। दोनों ओर आलीशान महल खड़े थे। हर किस्म की सवारियां सड़कों पर दौड़ा करती थीं। अदालतें, मदरसे, औषधालय सब

मौजूद थे। यहां तक कि नाटकघर भी बने हुए थे, जहां शहर के लोग तमाशा देखने जाते थे। इससे मालूम होता है कि पुराने जमाने में भी इस देश में नाटकों का रिवाज था। शहर के आसपास बड़ेबड़े बाग थे। इन बागों में किसी को फल तोड़ने की मुमानियत न थी। शहर की हिफाजत के लिए मजबूत चहारदीवारी बनी हुई थी। अंदर एक किला भी था। किले के चारों ओर गहरी खाई खोदी गयी थी, जिसमें हमेशा पानी लबालब भरा रहता था। किले के बुर्जों पर तोपें लगी रहती थीं। शिक्षा इतनी परचलित थी कि कोई जाहिल आदमी ूढ़ने से भी न मिलता था। लोग बड़े अतिथि का सत्कार करने वाले, ईमानदार, शांतिपरेमी, विद्याभ्यासी, धर्म के पाबन्द और दिल के साफ थे। अदालतों में आजकल की तरह झूठे मुकदमे दायर नहीं किये जाते थे। हर घर में गायें पाली जाती थीं। घीदूध की इफरात थी। खेतों में अनाज इतना पैदा होता था कि कोई भूखा न रहने पाता था। किसान खुशहाल थे। उनसे लगान बहुत कम लिया जाता था। डाके और चोरी की वारदातें सुनाई भी न देती थीं। और ताऊन, हैजा वगैरा बीमारियों का नाम तक न था। वह सब राजा दशरथ की बरकत थी।

एक रोज राजा दशरथ शिकार खेलने गये और घोड़ा दौड़ाते हुए एक नदी के किनारे जा पहुंचे। नदी दरख्तों की आड़ में थी। वहीं जंगल में अन्धक मुनि नामक एक अन्धा रहता था। उसकी स्त्री भी अंधी थी। उस वक्त उनका नौजवान बेटा श्रवण नदी में पानी भरने गया हुआ था। उसके कलशे के पानी में डूबने की आवाज सुनकर राजा ने समझा कि कोई जंगली हाथी नहा रहा है। तुरत शब्दवेधी बाण चला दिया। तीर नौजवान के सीने में लगा। तीर का लगना था कि वह जोर से चिल्लाकर गिर पड़ा। राजा घबराकर वहां गये तो देखा कि एक नौजवान पड़ा तड़प रहा है। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। बेहद अफसोस हुआ। नौजवान ने उनको लज्जित और दुःखित देखकर समझाया—अब रंज करने से क्या फायदा! मेरी मौत शायद इसी तरह लिखी थी। मेरे मांबाप दोनों अंधे हैं। उनकी कुटी वह सामने नजर आ रही है। मेरी लाश उनके पास पहुंचा देना। यह कहकर वह मर गया।

राजा ने नौजवान की लाश को कन्धे पर रखा और अंधे के पास जाकर यह दुःखद समाचार सुनाया। बेचारे दोनों बुड़े, तिस पर दोनों आंखों के अंधे, और यही इकलौता बेटा उनकी जिंदगी का सहारा था—इसके मरने का समाचार सुनकर फूटकर रोने लगे। जब आंसू जरा थमे तो उन्हें राजा पर गुस्सा आया। उनको खूब जी भरकर कोसा और यह शाप देकर कि जिस तरह बेटे के शोक में हमारी जान निकल रही है उसी तरह तुम भी बेटे ही के शोक में मरोगे, दोनों मर गये। राजा दशरथ भी रोधोकर यहां से विदा हुए।

राजा दशरथ के अब तक कोई संतान न थी। संतान ही के लिए उन्होंने तीन शादियां की थीं। बड़ी रानी का नाम कौशल्या था, मंझली रानी का सुमित्रा और छोटी रानी का कैकेयी। तीनों रानियां भी संतान के लिए तरसती रहती थीं। अंधे का शाप राजा के लिये वरदान हो गया। चाहे बेटे के शोक में मरना ही पड़े, बेटे का मुंह तो देखेंगे। ताज और तख्त का वारिस तो पैदा होगा। इस ख्याल से राजा को बड़ी तसकीन हुई। इसके कुछ ही दिन बाद अपने गुरु वशिष्ठ के मशविरे से राजा ने एक यज्ञ किया। इसमें बहुत से ऋषिमुनि जमा हुए और सबने राजा को आशीर्वाद दिया। यज्ञ के पूरे होते ही तीनों ही रानियां गर्भवती हुईं और नियत समय के बाद तीनों रानियों के चार राजकुमार पैदा हुए। कौशल्या से रामचन्द्र हुए, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न और कैकेयी से भरत। सारे राज में मंगलगीत गाये जाने लगे। परजा ने खूब उत्सव मनाया। राजा ने इतना सोनाचांदी दान किया कि राज में कोई निर्धन न रह गया। उनकी दिली कामना पूर्ण हुई। कहां एक बेटे का मुंह देखने को तरसते थे, कहां चारचार बेटे हो गये। घर गुलजार हो गया। ज्योतिहीन आंखें रोशन हो गयीं।

चारों लड़कों का लालनपालन होने लगा। जब वह जरा सयाने हुए तो गुरु वशिष्ठ ने उन्हें शिक्षा देना शुरू किया। चारों लड़के बहुत ही जहीन थे, थोड़े ही दिनों में वेदशास्त्र सब खत्म कर लिये और रणविद्या में भी खूब होशियार हो गये। धनुर्विद्या में, भाला चलाने में, कुश्ती में, किसी फन में इनका समान न था। मगर उनमें घमण्ड नाम को भी न था। चारों बुजुर्गों का अदब करते थे। छोटों को भी वह सख्तसुस्त न कहते। उनमें आपस में बड़ी गहरी मुहब्बत थी। एक दूसरे के लिए जान देते थे। चारों ही सुन्दर, स्वस्थ और सुशील थे। उन्हें देखकर सबके मुंह से आशीर्वाद निकलता था। सब कहते थे, यह लड़के खानदान का नाम रोशन करेंगे। यों तो चारों में एकसी मुहब्बत थी, मगर लक्ष्मण को रामचन्द्र से, शत्रुघ्न को भरत से खास परेम था। राजा दशरथ मारे खुशी के फूले न समाते थे।

ताड़का और मारीच का वध

एक दिन राजा दशरथ दरबार में बैठे हुए मन्त्रियों से कुछ बातचीत कर रहे थे कि ऋषि विश्वामित्र पधारे। विश्वामित्र उस समय के बहुत बड़े तपस्वी थे। वह क्षत्रिय होकर भी केवल अपनी आराधना के बल से बरहमर्षि के पद पर पहुंच गये थे। सभी ऋषि उनके सामने आदर से सिर झुकाते थे। मगर ज्ञानी होने पर भी वह किसी हद तक क्रोधी थे। किसी ने उनकी मजीर के खिलाफ काम किया और उन्होंने शाप दिया। इससे सभी राजेमहाराजे उनसे डरते थे; क्योंकि उनके शाप को कोई रद्द न कर सकता था। लड़ाई की विद्या में भी वह अद्वितीय थे। राजा दशरथ ने सिंहासन से उतर कर उनका स्वागत किया और उन्हें अपने सिंहासन पर बिठाकर बोले—आज इस गरीब के घर को अपने चरणों से पवित्र करके आपने मुझ पर बड़ा एहसान किया। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये; वह सर आंखों पर बजा लाऊं।

विश्वामित्र ने आशीर्वाद देकर कहा—महाराज! हम तपस्वियों को राजदरबार की याद उसी समय आती है, जब हमें कोई तकलीफ होती है, या जब हमारे ऊपर कोई अत्याचार करता है। मैं आजकल एक यज्ञ कर रहा हूँ; किन्तु राक्षस लोग उसे अपवित्र करने की कोशिश करते हैं। वह यज्ञ की वेदी पर रक्त और हिड्डियां फेंकते हैं। मारीच और सुबाहु दो बड़े ही विद्रोही राक्षस हैं। यह सारा फिसाद उन्हीं लोगों का है। मुझमें अपनी तपस्या का इतना बल है कि चाहूँ तो एक शाप देकर उनकी सारी सेना को जलाकर राख कर दूँ; पर यज्ञ करते समय क्रोध को रोकना पड़ता है। इसलिए मैं आपके पास फरियाद लेकर आया हूँ। आप राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मण को मेरे साथ भेज दीजिये, जिससे वह मेरे यज्ञ की रक्षा करें और उन राक्षसों को शिथिल कर दें। दस दिन में हमारा यज्ञ पूरा हो जायगा। राम के सिवा और किसी से यह काम न होगा।

राजा दशरथ बड़ी मुश्किल में पड़ गये। राम का वियोग उन्हें एक क्षण के लिये सह्य न था। यह भय भी हुआ कि लड़के अभी अनुभवी नहीं हैं, डरावने राक्षसों से भला क्या मुकाबला कर सकेंगे। डरते हुए बोले—हे पवित्र ऋषि! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; किन्तु इन अल्पवयस्क लड़कों को राक्षसों के मुकाबले में भेजते मुझे भय होता है। उन्हें अभी तक युद्धक्षेत्र का अनुभव नहीं है। मैं स्वयं अपनी सारी सेना लेकर आपके यज्ञ की रक्षा करने चलूंगा। लड़कों को साथ भेजने के लिए मुझे विवश न कीजिये।

विश्वामित्र हंसकर बोले—महाराज! आप इन लड़कों को अभी नहीं जानते। इनमें शेरों कीसी हिम्मत और ताकत है। मुझे पूरा विश्वास है कि ये राक्षसों को मार डालेंगे। इनकी तरफ से आप निडर रहिये। इनका बाल भी बांका न होगा।

राजा दशरथ फिर कुछ आपत्ति करना चाहते थे; मगर गुरु वशिष्ठ के समझाने पर राजी हो गये। और दोनों राजकुमारों को बुलाकर ऋषि विश्वामित्र के साथ जाने का आदेश दिया। रामचन्द्र और लक्ष्मण यह आज्ञा पाकर दिल में बहुत खुश हुये। अपनी वीरता को दिखाने का ऐसा अच्छा अवसर इन्हें पहले न मिला था। दोनों ने युद्ध में जाने के कपड़े पहने, हथियार सजाये और अपनी माताओं से आशीर्वाद लेने के बाद राजा दशरथ के चरणों पर गिरकर खुशीखुशी बिदा हुए। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को एक ऐसा मन्त्र बताया कि जिसको पूने से थकावट पास नहीं आती। नयेनये बहुत अद्भुत हथियारों का उपयोग करना सिखाया, जिनके मुकाबले में कोई ठहर न सकता था।

कई दिन के बाद तीनों आदमी गंगा को पार करके घने जंगल में जा पहुंचे। विश्वामित्र ने कहा—बेटा! इस जंगल में ताड़का नाम की दानवी रहती है। वह इस रास्ते से गुजरने वाले आदमी को पकड़कर खा डालती है। पहले यहां एक अच्छा नगर बसा हुआ था; पर इस दावनी ने सारे आदमियों को खा डाला। अब वही बसा हुआ नगर घना जंगल है। कोई आदमी भूलकर भी इधर नहीं आता। हम लोगों की आहट पाकर वह दानवी आती होगी। तुम तुरन्त उसे तीर से मार डालना।

विश्वामित्र अभी यह वाक्या बयान कर ही रहे थे कि हवा में जोर की सनसनाहट हुई और ताड़का मुंह खोले दौड़ती हुई आती दिखायी दी। उसकी सूरत इतनी डरावनी और डील इतना बड़ा था कि कोई कम साहसी आदमी होता तो मारे डर के गिर पड़ता। उसने इन तीनों आदमियों के सामने आकर गरजना और पत्थर फेंकना शुरू किया। विश्वामित्र ने रामचन्द्र को तीर चलाने का इशारा किया। रामचन्द्र एक औरत पर हथियार चलाना नियम के विरुद्ध समझते थे। ताड़का दानवी थी तो क्या, थी तो औरत। मगर ऋषि का संकेत पाकर उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। ऐसा तीर चलाया कि वह ताड़का की छाती में चुभ गया। ताड़का जोर से चीखकर गिर पड़ी और एक क्षण में तड़पतड़पकर मर गयी।

तीनों आदमी फिर आगे चले और कई दिनों बाद विश्वामित्र के आश्रम में पहुंच गये। था तो यह भी जंगल; पर इसमें अधिकतर ऋषि लोग रहा करते थे। शेर, नीलगाय, हिरन निडर घूमा करते थे। इस तपोभूमि के परभाव से शिकार खेलने वाले भी शिकार की तरफ परवृत्त न होते थे।

दूसरे दिन से विश्वामित्र ने यज्ञ करना शुरू किया। राम और लक्ष्मण कमर में तलवार लटकाये, धनुष और बाण हाथ में लिये जंगल के चारों ओर गश्त लगाने लगे। न खानेपीने की फिक्र थी, न सोनेलेटने की। रातदिन बिना सोये और बिना खाये पहरा देते थे। इस परकार पांच दिन कुशल से बीत गये। मगर छठे दिन क्या देखते हैं कि मारीच और सुबाहु राक्षसों की सेना लिये यज्ञ को अपवित्र करने चले आ रहे हैं। दोनों भाई तुरन्त संभल गये। ज्योंही मारीच सामने आया, रामचन्द्र ने ऐसा तीर मारा कि वह बड़ी दूर जाकर गिर पड़ा। सुबाहु बाकी था। उसे भी एक अग्निबाण में ठंडा कर दिया। फिर तो राक्षसी सेना के पैर उखड़ गये। दोनों भाइयों ने दूर तक उनका पीछा किया और कितनों ही को मार डाला। इस परकार यज्ञ सुन्दर रीति से पूरा हो गया। किसी परकार की रुकावट न हुई। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों की खूब परशंसा की।

विवाह

राम और लक्ष्मण अभी विश्वामित्र के आश्रम में ही थे कि मिथिला के राजा जनक ने विश्वामित्र को अपनी लड़की सीता के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए नवेद भेजा। उस समय में परायः विवाह स्वयंवर की रीति से होते थे, लड़की का पिता एक उत्सव करता था, जिसमें दूरदूर से आकर लोग सम्मिलित होते थे। उत्सव में साहस या युद्ध के कौशल की परीक्षा होती थी। जो युवक इस परीक्षा में सफल होता था, उसी के गले में कन्या जयमाला डाल देती थी। उसी से उसका विवाह हो जाता था। विश्वामित्र की हार्दिक इच्छा थी कि सीता का विवाह राम से हो जाय। वह यह भी जानते थे कि राम परीक्षा में अवश्य सफल होंगे। इसलिए जब वह मिथिला जाने लगे, तो राम और लक्ष्मण को भी साथ लेते गये। राजा दशरथ से आज्ञा लेने के लिए अयोध्या जाने और वहां से मिथिला आने के लिए काफी वक्त न था। मिथिला वहां से करीब ही थी। इसलिए विश्वामित्र ने सीधे वहां जाने का निश्चय किया।

आजकल जिस परान्त को हम बिहार कहते हैं, वही उस जमाने में मिथिला कहलाता था। मिथिला के राजा जनक बड़े विद्वान और ज्ञानी पुरुष थे, बड़ेबड़े ऋषिमुनि उनसे ज्ञान की शिक्षा लेने आते थे। कई साल पहिले मिथिला में बड़ा भारी अकाल पड़ा था। उस वक्त ऋषियों ने मिलकर फैसला किया कि यह काल यज्ञ ही से दूर हो सकता है। इस यज्ञ को पूरा करने की एक शर्त यह भी थी कि राजा जनक खुद हल चलायें। राजा जनक को अपनी परजा अपने पराण से भी अधिक पिरय थी। इसके सिर से इस संकट को दूर करने के लिए उन्होंने इस यज्ञ को शुरू कर दिया। जब वह हलबैल लेकर खेत में पहुंचे और हल चलाने लगे तो क्या देखते हैं कि फल की नोक से जो जमीन खुद गयी है उसमें एक चांदसी लड़की पड़ी हुई है। राजा के कोई सन्तान न थी; तुरन्त इस लड़की को गोद में उठा लिया और घर लाये। उसका नाम सीता रखा, क्योंकि वह फल की नोक से निकली थी। फल को संस्कृत में सित कहते हैं। इस ईश्वरीय देन को राजा जनक ने बड़े लाड़ और प्यार से पाला। और अच्छेअच्छे विद्वानों से शिक्षा दिलवायी। इसी सीता के विवाह पर यह स्वयंवर रचा गया था।

रामलक्ष्मण और विश्वामित्र सोन, गंगा इत्यादि नदियों को पार करते हुए चौथे दिन मिथिला पहुंचे। सारे शहर के लोग इन राजकुमारों की सुन्दरता और डीलडौल देखकर उन पर मोहित हो गये। सबके मुंह से यही आवाज निकलती थी कि सीता के योग्य कोई है तो यही राजकुमार है; जैसी सुन्दर वह है वैसे ही खूबसूरत रामचन्द्र हैं। मगर देखना चाहिये, इनसे शिव का धनुष उठता है या नहीं।

राजा जनक को विश्वामित्र के आने की खबर हुई तो उन्होंने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। जब उन्हें मालूम हुआ कि वह दोनों नौजवान राजा दशरथ के बेटे हैं, तब उनके दिल में भी यही ख्वाहिश हुई कि काश सीता का ब्याह राम से हो जाता; मगर स्वयंवर की शर्त से लाचार थे।

विश्वामित्र ने राजा से पूछा—महाराज, आपने स्वयंवर के लिए कौनसी परीक्षा चुनी है?

जनक ने उत्तर दिया—भगवन्! क्या कहूं, कुछ कहा नहीं जाता। सैकड़ों बरस गुजर गये, एक बार शिवजी ने मेरे किसी पूर्वज को अपना धनुष दिया था। वह धनुष तब से मेरे घर में रखा हुआ था। एक दिन मैंने सीता से अपनी पूजा की कोठरी को लीप डालने के लिए कहा—उसी कोठरी में वह पुराना धनुष रखा हुआ था। सैकड़ों बरस से कोई उसे उठा न सका था। सीता ने जाकर देखा तो उसके आसपास बहुत कूड़ा जमा हो गया था। उसने धनुष को उठकर एक ओर रख दिया। मैं पूजा करने गया तो धनुष को हटा हुआ देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब मालूम हुआ कि सीता ने उसे उठाकर जमीन साफ की है, तब मैंने शर्त की कि ऐसी वीर कन्या का विवाह उसी वर से करूंगा, जो धनुष को ढ़ाकर तोड़ देगा। अब देखूं, लड़की के भाग्य में क्या है।

दूसरे दिन स्वयंवर की तैयारियां शुरू हुईं। मैदान में एक बड़ा शामियाना ताना गया। सैकड़ों सूरमा जो अपने बल के घमंड में दूरदूर से आये हुए थे, आआकर बैठे। शहर के लाखों स्त्रीपुरुष एकत्रित हुए। शिवजी के धनुष को बहुतसे आदमी उठाकर सभा में लाये। जब सब लोग आ गये तो राजा जनक ने खड़े होकर कहा—ऐ भारतवर्ष के वीरो! यह शिवजी का धनुष आप लोगों के सामने रखा है। जो इसे तोड़ देगा, उसी के गले में सीता जयमाल डालेगी।

यह सुनते ही सूरमाओं और वीरों ने धनुष के पास जाजाकर जोर लगाना शुरू किया। सभी राजकुमार सीता से विवाह करने का स्वप्न देख रहे थे। कमर कसकसकर घमंड से ऐंठतेअकड़ते धनुष के पास जाते, और जब वह तिल भर भी न हिलता तो अपमान से गर्दन झुकाये अपनासा मुंह लिये लौट आते थे। सारी सभा में एक भी ऐसा योद्धा न निकला जो धनुष को उठा सकता, तोड़ने का तो जिक्र ही क्या।

राजा जनक ने यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा भय हुआ। सभा में खड़े होकर निराशासूचक स्वर में बोले—शायद यह वीरभूमि अब वीरों से खाली हो गयी। जभी तो इतने आदमियों में एक भी ऐसा न निकला जो इस धनुष को तोड़ सकता। यदि मैं ऐसा जानता तो स्वयंवर के लिए यह शर्त न रखता। ऐसा परतीत होता है कि सीता अविवाहित रहेगी। यही इसके भाग्य में है तो मैं क्या कर सकता हूं। आप लोग अब शौक से जा सकते हैं। इस हौसले और ताकत पर आप लोगों को यहां आने की जरूरत ही क्या थी?

लक्ष्मण बड़े जोशीले युवक थे। जनक की यह बातें सुनकर उनसे सहन न हो सका! जोश से बोला—महाराज! ऐसा अपनी जबान से न कहिये। जब तक राजा रघु का वंश कायम है, यह देश वीरों से खाली नहीं हो सकता। मैं डींग नहीं मारता। सच कहता हूं कि अगर खाली भाई साहब की आज्ञा पाऊं तो एकदम में इस धनुष के पुरजेपुरजे कर दूं। मेरे भाई साहब चाहें तो इसे एक हाथ से तोड़ सकते हैं। इसकी हकीकत ही क्या है। लक्ष्मण की यह जोशपूर्ण बातें सुनकर सारे सूरमा दंग रह गये। रामचन्द्र छोटे भाई की तबियत से परिचित थे। उनका हाथ पकड़कर खींच लिया और बोले—भाई, यह समय इस तरह की बातें करने का नहीं है। जब तक तुम्हारे बड़े मौजूद हैं, तुम्हें जबान खोलना, उचित नहीं।

लक्ष्मण बैठ गये तो विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा—बेटा, अब तुम जाकर इस धनुष को तोड़ो, जिसमें राजा जनक को तस्कीन हो। रामचन्द्र सीता को पहले ही दिन एक बाग में देख चुके थे। दोनों भाई बाग में सैर करने गये थे और सीता देवी की पूजा करने आयी थीं। वहीं दोनों की आंखें मिली थीं। उसी वक्त से रामचन्द्र को सीता से परेम हो गया था। वह इसी समय की परतीक्षा में थे। विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही उन्होंने परणाम किया और धनुष की ओर चले। सूरमाओं ने अपना अपमान कम करने के विचार से उन पर आवाजें कसना शुरू किया। एक ने कहा, जरा संभले हुए जाइयेगा, ऐसा न हो, अपने ही जोर में गिर पड़िये। दूसरा बोला—इस पुराने धनुष पर दया कीजिये, कहीं पुरजेपुरजे न कर दीजियेगा। तीसरा बोला—जरा धीरेधीरे कदम रखिये, जमीन हिल रही है। किन्तु रामचन्द्र ने इस तीनों की तरफ तनिक भी ध्यान न दिया। धनुष को इस तरह उठा लिया जैसे कोई फूल हो और इतनी जोर से चाया कि बीच से उसके दो टुकड़े हो गये। इसके टूटने से ऐसी आवाज हुई कि लोग चौंक पड़े। धनुष ज्योंही टूटकर गिरा, वह सफलता की परसन्नता से उछलकर दौड़े। राजा जनक सभा के बाहर चिन्तापूर्ण दृष्टि से यह दृश्य देख रहे थे। रामचन्द्र को गले लगा लिया और सीताजी ने आकर उसके गले में जयमाल डाल दी। नगर वालों ने परसन्न होकर जयजयकार करना शुरू किया। मंगलगान होने लगा, बन्दूकें छूटने लगीं। और सूरमा लोग एकएक करके चुपकेचुपके सरकने लगे। शहर के छोटेबड़े धनीनिधन, सब खुशी से फूले न समाते थे। सभी ने

मुंहमांगी मुराद पायी। सलाह हुई कि राजा दशरथ को शुभ समाचार की सूचना देनी चाहिये। कई ऊंट के सवार तुरन्त कौशल की ओर रवाना किये गये। विश्वामित्र राजकुमारों के साथ राजभवन में जाना ही चाहते थे कि मंडप के बाहर शोर और गुल सुनायी देने लगा। ऐसा मालूम होता था कि बादल गरज रहा है। लोग घबड़ाघबड़ाकर इधरउधर देखने लगे कि यह क्या आफत आने वाली है। एक क्षण के बाद भेद खुला कि परशुराम ऋषि क्रोध से गरजते चले आ रहे हैं। देवों कासा कद, अंगारेसी लाललाल आंखें, क्रोध से चेहरा लाल, हाथ में तीरकमान, कंधे पर फरसा—यह आपका रूप था। मालूम होता था, सबको कच्चा ही खा जायंगे। आते ही गरजकर बोले—किसने मेरे गुरु शिवजी का धनुष तोड़ा है, निकल आये मेरे सामने, जरा मैं भी देखूं वह कितना वीर है?

रामचन्द्र ने बहुत नमरता से कहा—महाराज! आपके किसी भक्त ने ही तोड़ा होगा और क्या। परशुराम ने फरसे को घुमाकर कहा—कदापि नहीं, यह मेरे भक्त का काम नहीं। यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य मेरे किसी वैरी ने यह काम किया है। मैं भी उसका सिर तन से अलग कर दूंगा। किसी तरह क्षमा नहीं कर सकता। मेरे गुरु का धनुष और उसे कोई क्षत्रिय तोड़ डाले? मैं क्षत्रियों का शत्रु हूं। जानीदुश्मन! मैंने एकदो बार नहीं, इक्कीस बार क्षत्रियों के रक्त की नदी बहायी है। अपने बाप के खून का बदला लेने के लिये मैंने जहां क्षत्रियों को पाया है, चुनचुनकर मारा है। अब फिर मेरे हाथों क्षत्रियों पर वही आफत आने वाली है। जिसने यह धनुष तोड़ा हो, मेरे सामने निकल आवे।

दिलेर और मनचले लक्ष्मण यह ललकार सुनकर भला कब सहन कर सकते थे। सामने आकर बोले—आप एक सड़ेसे धनुष के टूटने पर इतना आपसे क्यों बाहर हो रहे हैं? लड़कपन में ऐसे कितने धनुष खेलखेलकर तोड़ डाले, तब तो आपको तनिक भी क्रोध न आया। आज इस पुराने, बेदम धनुष के टूट जाने से आप क्यों इतना कुपित हो रहे हैं? क्या आप समझते हैं कि इन गीदड़ भभकियों से कोई डर जायगा?

जैसे घी पड़ जाने से आग और भी तेज हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मण के ये शब्द सुनकर परशुराम और भी भयावने हो गये। फरसे को हाथ में लेकर बोले—तू कौन है जो मेरे साथ इस धृष्टता से व्यवहार करता है? तुझे क्या अपनी जान जरा भी प्यारी नहीं है, जो इस तरह मेरे सामने जबान चलाता है? क्या यह धनुष भी वैसा ही था, जैसे तुमने लड़कपन में तोड़े थे? यह शिवजी का धनुष था।

लक्ष्मण बोले—किसी का धनुष हो, मगर था बिल्कुल सड़ा हुआ। छूते ही टूट गया। जोर लगाने की जरूरत ही न पड़ी। इस जरासी बात के लिए व्यर्थ आप इतना बिगड़ रहे हैं। परशुराम और भी झल्लाकर बोले—अरे मूर्ख, क्या तू मुझे नहीं पहचानता? मैं तुझे लड़का समझकर अभी तरह दिये जाता हूं, और तू अपनी धृष्टता नहीं छोड़ता। मेरा क्रोध बुरा है। ऐसा न हो, मैं एक बार मैं तेरा काम तमाम कर दूं।

लक्ष्मण—मेरा काम तो तमाम हो चुका! हां, मुझे डर है कि कहीं आपका क्रोध आपको हानि न पहुंचाये। आप जैसे ऋषियों को कभी क्रोध न करना चाहिये।

परशुराम ने फरसा संभालते हुए दांत पीसते हुए कहा—क्या कहूं, तेरी उमर तुझे बचा रही है, वरना अब तक तेरा सिर तन से जुदा कर देता।

लक्ष्मण—कहीं इस भरोसे मत रहियेगा। आप फूंककर पहाड़ नहीं उड़ा सकते। आप बराह्मण हैं इसलिए आपके ऊपर दया आती है। शायद अभी तक आपका किसी क्षत्रिय से पाला नहीं पड़ा। जभी आप इतना बफार रहे हैं।

रामचन्द्र ने देखा कि बात ब्रती जा रही है, तो लक्ष्मण का हाथ पकड़कर बिठा दिया और परशुराम से हाथ जोड़कर बोले—महाराज! लक्ष्मण की बातों का आप बुरा न मानें। यह ऐसा ही धृष्ट है। यह अभी तक आपको नहीं जानता, वरना यों आपके मुंह न लगता। इसे क्षमा कीजिये, छोटों का कुसूर बड़े माफ किया करते हैं। आपका अपराधी मैं हूँ, मुझे जो दण्ड चाहें, दें। आपके सामने सिर झुका हुआ है।

रामचन्द्र की यह आदरपूर्ण बातचीत सुनकर परशुराम कुछ नर्म पड़े कि एकाएक लक्ष्मण को हंसते देखकर फिर उनके बदन में आग लग गयी। बोले—राम! तुम्हारा यह भाई अति धृष्ट है। विनय और शील तो इसे छू तक नहीं गया। जो कुछ मुंह में आता है, बक डालता है। रंग इसका गोरा है। पर दिल इसका काला है। ऐसा अशिष्ट लड़का मैंने नहीं देखा।

अभी तक तो लक्ष्मण, परशुराम को केवल छेड़ रहे थे, किन्तु ये बातें सुनकर उन्हें क्रोध आ गया। बोले—सुनिये महाराज! छोटों का काम बड़ों का आदर करने का है, किन्तु इसकी भी सीमा होती है। आप अब इस सीमा से ब्रे जा रहे हैं। आखिर आप क्यों इतना अपरसन्न हो रहे हैं? आपके बिगड़ने से तो धनुष जुड़ न जायगा। हां, जगहंसाई अवश्य होगी। अगर यह धनुष आपको ऐसा ही पिरय है, तो किसी कारीगर से जुड़वा दिया जायगा। इसके अतिरिक्त और हम क्या कर सकते हैं। आपका क्रोध बिलकुल व्यर्थ है।

मारे क्रोध के परशुराम की आंखें बीरबहूटी की तरह लाल हो गयीं। वह थरथर कांपने लगे। उनके नथने फड़कने लगे। रामचन्द्र ने उनकी यह दशा देखकर लक्ष्मण को वहां से चले जाने का इशारा किया और अत्यन्त विनीत भाव से बोले—महाराज! बड़ों को छोटे, कमसमझ आदमियों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। इसके बकने से क्या होता है। हम सब आपके सेवक हैं। धनुष मैंने तोड़ा है। इसका दोषी मैं हूँ। इसका जो दण्ड आप उचित समझें मुझे दें। आप इसका जो दण्ड मांगें, मैं देने को तैयार हूँ।

परशुराम ने नर्म होकर कहा—तावान मैं तुमसे क्या लूंगा। मुझे यही भय है कि इस धनुष के टूट जाने से क्षत्रियों को फिर घमण्ड होगा और मुझे फिर उनका अभिमान तोड़ना पड़ेगा। यह शिव का धनुष नहीं टूटा है, बराहमणों के तेज और बल को धक्का लगा है।

रामचन्द्र ने हंसकर कहा—ऋषिराज! क्षत्रिय ऐसे नीच नहीं हैं कि इस जरासे धनुष के टूट जाने से उन्हें घमण्ड हो जाय। अगर आप मेरी वीरता की विशेषता देखना चाहते हैं तो इससे भी बड़ी परीक्षा लेकर देखिए।

परशुराम—तैयार है?

राम—जी हां, तैयार हूँ।

परशुराम ने अपना तीर और कमान रामचन्द्र के समीप फेंककर कहा—अच्छा, इस धनुष पर परत्यंचा च़ा। देखूँ तो कितना वीर है।

रामचन्द्र ने धनुष उठा लिया और बड़ी आसानी से परत्यंचा च़ाकर बोले—कहिए, अब क्या करूं? तोड़ दूँ इस धनुष को?

परशुराम का सारा क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने ब्रकर रामचन्द्र को हृदय से लगा लिया और उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपना धनुषबाण लेकर बिदा हो गये। राजा जनक की जान सूख रही थी कि न जाने क्या विपदा आने वाली है। परशुराम के चले जाने से जान में जान आयी। फिर मंगलगान होने लगे।

राजा दशरथ रामचन्द्र और लक्ष्मण का समाचार न पाने से बहुत चिन्तित हो रहे थे। यह शुभसमाचार मिला तो बड़े परसन्न हुए। अयोध्या में भी उत्सव होने लगा। दूसरे दिन धूमधाम से बारात सजा कर वह मिथिला चले।

राजा जनक ने बारात का खूब सेवासत्कार किया और शास्त्रविधि से सीता जी का विवाह रामचन्द्र से कर दिया। उनकी एक दूसरी लड़की थी जिसका नाम उर्मिला था। उसकी शादी लक्ष्मण से हो गयी। राजा जनक के भाई के भी दो लड़कियां थीं। वे दोनों भरत और शत्रुघ्न से ब्याही गयीं। कई दिन के बाद बारात बिदा हुई। राजा जनक ने अनगिनती सोनेचांदी के बर्तन, हीरेजवाहर, जड़ाऊ झूलों से सजे हुए हाथी, नागौरी बैलों से जुते हुए रथ, अरब जाति के घोड़े दहेज में दिये।

>>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

दुर्गादास
प्रेमचंद

[अनुक्रम](#)

अध्याय 2

[पीछे](#)

2

एक तो अंधेरी अटपटी राह, बेचारा घोड़ा अटक-अटक कर चलता था। वह अपनी ही टापों की ध्वनि सुनकर कभी पहाड़ियों से टकराकर लौटती थी, चौंक पड़ता था। पहर रात जा चुकी थी, धीरे-धीरे चारों ओर चांदनी छिटकने लगी थी। दूर से कंटालिया गांव अब धुंआ-सा दिखाई पड़ा था। वीर दुर्गादास देश की दशा पर खीझता चला जा रहा था। अकस्मात् तलवारों की झनझनाहट सुन पड़ी। चौकन्ना हो, अपनी तलवार खींच ली और उसी ओर बढ़ा, देखा कि दो राजपूत को बाईस मुगल घेरे हुए हैं। क्रोध में आकर मुगलों पर टूट पड़ा। दो-चार मारे गये और दो-चार घायल हुए। मुगलों ने पीठ दिखाई और 'मदद-मदद' चिल्लाने लगे। वीर दुर्गादास ने कहा – 'दोनों राजपूत में से एक तो मारा गया है और दूसरा घायल। चाहता था। कि घायल राजपूत को उठा ले जाय, परन्तु न हो सका। चन्द्रमा के प्रकाश में देखा कि दौड़ते हुए बीस-पच्चीस मुगल चले आ रहे हैं। वीर दुर्गादास ने उनको इतना भी समय न दिया, कि वे अपने शत्रु को तो देख लेते, दस-ग्यारह को गिरा दिया। खून! खून! जोरावर खां का खून! चिल्लाते हुए मुगल पीछे हटे थे, कि दुर्गादास ने सोचा, अब यहां ठहरना चतुराई नहीं। बस, घायल राजपूत को उठाकर कल्याणपुर की ओर भाग निकला। थोड़ी ही रात रहे घर पहुंचा। बूढ़ी माता दुर्गादास और दूसरे राजपूत को रक्त से नहाया हुआ देख घबरा उठी। तुरन्त ही दोनों की मरहम-पट्टी हुई थी, थोड़ी देर बाद जब दुर्गादास कुछ स्वस्थ हुआ तो माता ने पूछा बेटा, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? दुर्गादास ने अपनी बीती कह सुनाई। माता ने घायल राजपूत को देखा, तो पहचान गई। दुर्गादास से कहा – 'क्या तुम इन्हें नहीं पहचानते? दुर्गादास के बोलने से पहले ही घायल राजपूत, जो अब सचेत हो चुका था, बोल उठा मां जी, दुर्गादास मुझे पहचानते तो हैं; परन्तु इस समय नहीं पहचान सके, क्योंकि पहले के देखते अब मुझमें अन्तर भी तो है! भैया, मैं आपका चरण-सेवक महासिंह हूं! बूढ़ी मां जी महासिंह पर हाथ फेरती हुई बोली हां, तू तो बहुत दुर्बल हो गया है। बेटा ऐसी क्या विपत्ति पड़ी? महासिंह अभी बोला भी न था। कि घर का सेवक नाथू दौड़ता हुआ आया और बोला महाराज, भागो। हथियारबन्द मुगल सिपाही चिल्लाते चले आ रहे हैं।

मां जी ने कहा – 'बेटा, कहीं भागकर अपने प्राण बचाओ मुगल बहुत हैं, तुम अकेले हो और महासिंह घायल है, व्यर्थ प्राण देना चतुराई नहीं। दुर्गादास बोले मां जी, तुम सबको संकट में छोड़कर मैं अपने प्राणों की रक्षा करूं? महासिंह ने समझाया नहीं भाई, मां जी का कहना मानो। जिन्दा रहोगे, तभी देश का उद्धार कर सकोगे।

दुर्गादास ने कहा – ‘ देखो, मुगलों की तलवारों की झन-झनाहट सुन पड़ती है। वह अब आ पहुंचे। भागने का समय कहां रहा? और जायें भी तो कहां जायें?’

नाथू बोला महाराज! आप लोग पीछे वाले अन्धो कुएं में उतर जाएं।

माता का हठ पूरा करने के लिए दुर्गादास छिपने को चला; परन्तु कुएं में पहले महासिंह को उतारा; क्योंकि वह घायल था। फिर शोनिंग जी की सौंपी हुई लोहे की सन्दूकची उतारी। उसके उपरान्त, तेजकरण और जसकरण को उतारा। इतने में मुसलमानों ने किवाड़ तोड़ डाले। दुर्गादास कुएं में न उतर सका, एक छितरे बरगद के वृक्ष पर चढ़ गया। सिपाहियों ने घर का कोना-कोना ढूंढा पर दुर्गादास न मिला। एक सिपाही मांजी को सरदार मुहम्मद खां के पास पकड़ लेने चला। देखते ही मुहम्मद खां ने डपटकर कहा – ‘ खबरदार! बूढ़ी औरत को हाथ न लगाना। सिपाही अलग जा खड़ा हुआ। मुहम्मद खां आप ही मां जी के सामने गया और बड़ी नर्मी से बोला मां जी! दुर्गादास ने कंटालिया के सरदार शमशेर खां के भतीजे जोरावर खां को मार डाला है। बादशाह की आज्ञा ऐसे अपराध के लिए शूली है। अपराधी के बचाने अथवा छिपाने का भी यही दण्ड है।

मां जी ने कहा – ‘ सरदार! यह तू किससे कह रहा है? मैं दुर्गादास की मां हूं। क्या मां अपने बेटे को अपने हाथों शूली पर चढ़ा देगी? भला मैं बता सकती हूं कि दुर्गादास कहां है? यदि प्राण का बदला प्राण लेना ही न्याय है, तो दुर्गादास अपराधी नहीं। उसने तो जोरावर खां को एक राजपूत के मार डालने के बदले में ही मारा है। मुहम्मद खां ने कहा – ‘ मां जी! मुझे यह मालूम न था, कि जोरावर खां किसी के बदले में मारा गया है। अब मैं जाता हूं। परन्तु दुर्गादास को सूर्य निकलने के पहले ही किसी अनजाने स्थान में भेज देना। नहीं तो दूसरे सरदार के आने पर बना-बनाया काम बिगड़ जायगा। यह कहता हुआ शरीफ मुहम्मद खां बाहर निकला और अपने सिपाहियों को किसी दूसरे गांव में दुर्गादास की खोज करने की आज्ञा दे दी। संकट में कभी-कभी हमें उस तरफ से मदद मिलती है, जिधर हमारा ध्यान भी नहीं होता।

मुगलों के चले जाने के बाद, दुर्गादास वृक्ष से उतर कर मां जी के पास आया। मां जी ने मुहम्मद खां के बर्ताव की बड़ी सराहना की और दुर्गादास को सूर्योदय से पहले ही घर से निकल जाने को कहा – ‘। दुर्गादास राजी हो गया। परन्तु जसकरण और तेजकरण को माता की रक्षा के लिए छोड़ जाना चाहा। मां जी ने कहा – ‘ ना बेटा! मेरे काम के लिए नाथू बहुत है। तू जसकरण और तेजकरण को अपने साथ लेता जा। न जाने कब कौन काम पड़े! एक से दो अच्छे हैं। दुर्गादास सवेरा होते-होते मां जी को प्रणाम कर अपने भाई और बेटे को साथ ले घर से निकला। चलते समय नाथू को बुलाकर कहा – ‘ देख माजी के कुशल-समाचार हमको प्रतिदिन पहुंचाया करना। और मुगलों से सदा सावधान रहना। महासिंह यदि जीवित हो, तो आज ही जैसे बने वैसे माइं पहुंचा देना और यदि मर गया हो, तो दाह-क्रिया कर देना और सुन उस लोहे की सन्दूकची को अपने प्राणों के समान समझना; परन्तु खोलकर यह न देखना कि उसमें क्या है? इस प्रकार नाथू को समझा-बुझाकर सूर्योदय के पहले ही अरावली की पहाड़ियों में पहुंच गया। माजी द्वार पर बड़ी देर तक खड़ी रहीं, जब दोनों बेटे और पोता आंख से ओझल हो गये तो घर लौट आयीं और ईश्वर से प्रार्थना करने लगीं भगवान्! हमारे बेटों को कुशल से रखना।

नाथू जो अभी बाहर ही था, दौड़ता हुआ आया, बोला मां जी-मां जी, सामने से कुछ घुड़सवार चले आ रहे हैं। नाथू और कुछ न कह सका था। कि डेढ़-दो सौ मुसलमान सिपाही घर में घुस आये और मां जी को पकड़ लिया। नाथू घबरा उठा, अपने लिए नहीं, बूढ़ी मां जी के लिए। वह यह नहीं देख सकता था। कि एक क्षत्रणी मुगल सिपाहियों के

बीच उधाड़ी खड़ी हो; परन्तु क्या करे? चार सिपाहियों ने पहले नाथू को ही पकड़ा। सरदार ने पूछा डोकरी, बता, तेरा खूनी लड़का दुर्गादास कहां है? मां जी ने कहा – ‘ मैं नहीं जानती, घर पड़ा है। जहां हो, खोज लो।

सरदार ने नर्मी से फिर कहा – ‘ माजी, सच-सच बता दो, तो मैं दुर्गादास का खून माफ करा दूंगा और मकदूर भर उसकी मदद भी करूंगा। तुम्हें भी बादशाह से बहुत-सा धन दिला दूंगा; क्योंकि दुर्गादास अपराधी नहीं। अपराधी तो वह राजपूत है, जिसके लिए जोरावर खां मारा गया। हमें दुर्गादास से और कुछ न चाहिए। हमें उस राजपूत का पता बता दो, वह कौन था। और कहां है। यदि बादशाह को पता न लगा, तो उसके बदले तुम सब मारे जाओगे।

मां जी बोलीं अच्छा हो, मैं बेटे की रक्षा के लिए मारी जाऊं। मैं बूढ़ी हूं, अब दिन भी मरने के समीप ही हूँ; परन्तु बेटों की प्राण-रक्षा के लिए मैं विश्वासघात नहीं कर सकती। जिसे आश्रय दिया है, उसे स्वार्थवश होकर निकाल नहीं सकते।

यह सुनकर शमशेर खां जल उठा और तलवार खींचकर मां जी की ओर दौड़ा। नाथू जिसे सिपाही पकड़े पास ही खड़े थे, अपनी पूरी शक्ति लगाकर सिपाहियों के बीच से निकला और शमशेर खां के वार को रोका, परन्तु घायल होकर गिर पड़ा। दूसरे वार ने वीर माता का काम तमाम कर दिया। राजपूतानी ने कुल-मर्यादा की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी। सरदार को अब भी सन्तोष न हुआ। घर की सम्पत्ति भी लुटवा ली और तब सिपाहियों को लौटने की आज्ञा दी। एक सिपाही वहीं खड़ा रहा; शमशेर खां ने पूछा क्यों रे खुदाबख्श! तू क्यों खड़ा है? खुदाबख्श ने कहा – ‘ मैं तेरे जैसे जालिम का कहना नहीं मानता, तू मुसलमान नहीं। अपने धर्म का जानने वाला मुसलमान कभी ऐसा अतयाचार नहीं कर सकता। कोई भी वीर पुरुष अबला पर हाथ नहीं उठाता। तूने उस बुढ़िया को क्यों मारा? इसने तेरा क्या बिगाड़ा था? तूने उससे कहीं घोर अपराधा किया, जो दुर्गादास पर लगाया जा रहा है। बता, दो राजपूतों में से एक घायल हुआ था। और दूसरा मारा गया था।,उसके मारने वाले को किसने शूली दी? शमशेर खां बिगड़कर खुदाबख्श की ओर लपका। खुदाबख्श पहले ही से सावधान था। शमशेर खां को पटक कर छाती पर चढ़ बैठा। उसकी फरियाद सुनने वाला भी वहां कोई न था। सिपाही पहले ही चले गये थे। खुदाबख्श ने एक हाथ से सरदार का गला दबाया और दूसरे हाथ से करौली निकाली। शमशेर खां गिड़गिड़ाकर प्राणों की भिक्षा मांगने लगा। खुदाबख्श ने करौली फिर कमर में रख ली और शमशेर खां को छोड़कर बोला यह न समझना, मैंने तुझ पर दया की है। मैंने सोचा, वीर दुर्गादास अपनी बूढ़ी माता का बदला किससे लेगा? अपने क्रोध की भभकती हुई आग किसके रक्त से बुझायेगा? बस, इसलिए मैंने अपने हाथ तुम जैसे पापी के रक्त में नहीं रंगे। यह कहकर खुदाबख्श पीछे फिरा, और शमशेर खां कंटालिया की ओर भागा।

खुदाबख्श ने जाकर नाथू और मां जी की लाश देखी कि शायद अब भी कुछ जान बाकी हो। तब तक नाथू चैतन्य हो चुका था।, यद्यपि घाव गहरा लगा था।

खुदाबख्श ने नाथू को जीता देख ईश्वर को धान्यवाद दिया और घाव धोकर पट्टी बांधी। फिर बोला भाई! मुझसे डरो मत, मैं वह मुसलमान नहीं जो किसी का बुरा चेतूं। आखिर एक दिन खुदा को मुंह दिखाना है। मेरे लायक जो काम हो, वह बतलाओ। मुझे अपना भाई समझो। नाथू बड़ा प्रसन्न हुआ। मां जी की लोथ एक कोठरी में रखकर फिर दोनों ने मिलकर महासिंह को कुएं से निकाला। बाहर की वायु लगने से धीरे-धीरे महासिंह भी चैतन्य हो गया। नाथू ने दुर्गादास का वन जाना, मुसलमानों का धावा, मां जी का मरना और खुदाबख्श की कृति संक्षेप में

कह सुनाई। महासिंह की आंखों में जल भर गया। कहने लगा नाथू! यह सब मुझ अभागे के कारण हुआ। अच्छा होता, कि मैं वहीं मारा जाता तो अपने आदमियों की यह दशा तो न देखता।

नाथू बोला महाराज, जो होना था, हो लिया। अब आप खुदाबख्श के साथ माझों जाइए। और मैं स्वामी के पास जाता हूं। खुदाबख्श ने कहा – ‘ नाथू हो सके तो मुझे दूसरे कपड़े ला दो, जिसमें हमें कोई पहचान न सके। नहीं तो हमारी खैरियत नहीं। नाथू ने एक जोड़ा कपड़ा और दो घोड़े ला दिये। महासिंह लोहे की संदूकची लेकर, खुदाबख्श के साथ माझों चल दिया, और नाथू अरावली की पहाड़ियों में घूमने लगा। एक तो बूढ़ा, दूसरे घाव, तीसरे पहाड़ियों का चढ़ना; नाथू एक जगह बैठ गया। सोचने लगा परमात्मा! यह दो ही दिन मैं क्या हो गया? हम जहां कल आनन्द करते थे, आज वही राज-भवन श्मशान हो गया। जिसकी धाक सारे मारवाड़ में थी, आज न जाने किस पहाड़ी की गुफा में छिपा पड़ा है। बूढ़ी मां जी की लोथ घर में पड़ी सड़ रही है। हाय! जिसके बेटे का सामना बड़े-बड़े शूरवीर नहीं कर सकते थे, उसकी यह दशा! एक दुष्ट गीदड़ के हाथों मारी जाय! प्रभु, तेरी लीला अद्भुत है! आज ही मेरे स्वामी ने मुझे वृद्धा मां जी की सेवा सौंपी थी। और मैं आज ही उनके मरने का समाचार लेकर जाता हूं। हाय! स्वामी के पूछने पर मैं क्या उत्तर दूंगा? कैसे कहूंगा, वृद्धा मां जी को दुष्ट शमशेर खां ने मेरे जीते-जी मार डाला। हे प्रभु! यह कहने के पहले ही मैं मर क्यों न जाऊं? नहीं! नहीं! यदि मर जाता हूं तो स्वामी को दुष्ट का नाम कौन बतायेगा? हाय! अभागे नाथू! यह कहते-कहते वह अचेत हो गया। दुखियों पर दया करने वाली निद्रा देवी ने उसे अपनी गोद में लिटा लिया और वायु ने अपने कोमल झकोरों से थपककर सुला दिया। सवेरा हुआ, नाथू उठ बैठा और एक बहते हुए झरने से जल लेकर हाथ-मुंह धोया। ईश्वर की प्रार्थना कर एक ओर चल दिया, दोपहर होते-होते उस पहाड़ी पर पहुंचा, जहां दुर्गादास छिपा था। अपना परिचय देने के लिए राजपूती तलवार का बखान करते हुए मारू रागिनी गाई, जिसे सुनकर वीर दुर्गादास गुफा से बाहर निकला नाथू ने अपने स्वामी को देखा, तो दौड़कर चरणों पर गिर पड़ा। दुर्गादास ने पूछा नाथू हमारी मांजी तो कुशल से हैं?

नाथू ने इस प्रश्न को टालकर कहा – ‘ महाराज कल ही आपके चले आने के बाद महासिंह जी को कुएं से निकाला, वे जीवित थे। लोहे वाली पेटी लेकर माझों चले गये और (अंगूठी देकर) चलते समय यह अमूल्य अंगूठी देकर कहा – ‘ नाथू, यह अंगूठी अपने स्वामी को देना और कहना जिसके द्वारा यह अंगूठी मेरे पास भेजी जायगी, मैं उसके आज्ञानुसार अपने प्राण भी दे सकूंगा। जसकरण और तेजकरण दोनों माता के कुशल समाचार के लिए व्याकुल थे। बोले नाथू! और बातें पीछे करना। पहले मां जी की कुशल कह। नाथू सूख गया, आंखों में आंसू भर गये। दुर्गादास ने घबड़ाकर कहा – ‘ नाथू! क्यों? बोलता क्यों नहीं? क्या हुआ? शीघ्र कह। नाथू ने रो-रोकर शोक वृत्तान्त विस्तार सहित कह सुनाया। और शमशेर खां की तलवार आगे फेंक दी।

दुर्गादास की आंखें क्रोध से लाल हो गयीं। तलवार हाथ में उठा ली और बोला हे, सर्वशक्तिमान् जगत के साक्षी! मैं आपके सामने सौगन्धा लेता हूं, जिस पापी ने हमारी निर्दोष वृद्धा माता को मारा है, उसे इसी तलवार से मारकर जब तक रक्त का बदला न ले लूंगा, जलपान न करूंगा, नाथू ने कांपते स्वर में कहा – ‘ हां, हां, स्वामी! यह क्या करते हैं? मुगल बहुत हैं और आप अकेले, यदि आज ही बदला न मिल सका, तो कब तक आप बिना जलपान के रहेंगे? दुर्गादास बोला नाथू! नाथू! तू भूलता है। मैं अकेला नहीं, मेरा सत्य, मेरा प्रभु मेरे साथ है। सत्य की सदैव जय होती है। अबला पर हाथ उठानेवाला बहुत दिन जीवित नहीं रह सकता। ईश्वर ने चाहा, तो आज ही माता के ऋण से उऋण हो जाऊंगा। यदि ऐसा न किया गया, तो एक देश पर प्राण देने वाली क्षत्रणी की गति कदापि न होगी।

सूर्य अस्त हो रहा था। अंधोरा बढ़ता जा रहा था। दुर्गादास ने नाथू को अपनी अंगूठी देकर कहा – ‘तू महासिंह के पास चला जा और मेरी अंगूठी देकर कहना, दुर्गादास अपनी वृद्धा मां जी का बदला लेने के लिए कंटालिया गये हैं, यदि जीते रहे तो कभी मिलेंगे, नहीं तो उनको अन्तिम राम-राम। और उसी क्षण अपने बेटे और अपने भाई को साथ लेकर कंटालिया की ओर चल दिये। पहर रात बीते पटेलों की बस्ती पहुंचे। रणसिंह लगभग एक सौ राजपूत वीरों को साथ ले वीर दुर्गादास की अगवानी के लिये आया। दुर्गादास राजपूतों को देखकर प्रसन्न हुआ। शमशेर खां वाली तलवार ऊंची उठा कर बोला भाइयो! यह तलवार दुष्ट शमशेर खां कंटालिया के सरदार की है। उसने हमारी पूज्य माता की हत्या करके देश का अपमान किया है। मैंने मां जी का बदला लेने के लिए सौगन्धा ली है। यदि तुममें राजपूती का घमण्ड है, यदि तुममें देश के उद्धार की इच्छा है, यदि तुम अपनी निर्दोष वृद्धा माताओं, बहिनों और बेटियों की लाज रखना चाहते हो, तो शत्रुओं से बदला लेने की सौगन्ध उठाओ।

दुर्गादास के जलते हुए शब्द सुनकर वीर राजपूतों का रक्त उमड़ उठा और एक साथ ही सब सरदार बोल उठे हम बदला लेंगे। जीते-जी आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। तुरन्त सबों ने म्यान से तलवारें खींच लीं और दुर्गादास के पीछे-पीछे चल दिये।

आधी रात बीत चुकी थी। जान की बाजी खेलने वालों का दल कंटालिया पहुंचा और किले पर धावा बोल दिया। द्वार बन्द था। उसे तोड़कर सब अन्दर घुसे, जो सामने आया, उसे वहीं ठण्डा कर दिया। हथियारों की झनझनाहट सुनकर शमशेर खां चौंक उठा। सामने देखा तो वीर दुर्गादास खड़ा था। दुर्गादास ने कहा – ‘ओ! निर्दोष अबला पर हाथ उठाने वाले पापी शमशेर खां, सावधान! अपने काल को सामने देख शमशेर खां गिड़गिड़ाने लगा।

दुर्गादास ने कहा – ‘संभल जा। राजपूत कभी निहत्थे शत्रु पर वार नहीं करते। देख, यह वही तलवार है, जिसने वृद्धा मां जी का रक्तपान किया है। अभी प्यासी है, अब तेरे रक्त से इसकी प्यास बुझाऊंगा।

शमशेर खां सजग होकर सामने आया। वीर दुर्गादास ने एक ही वार में उसका सिर उड़ा दिया। तब तलवार वहीं फेंक दी और अपने सहायक शूरवीरों को साथ ले कल्याणगढ़ की ओर चल दिया।

दुर्गादास की इच्छा थी कि मां जी का अग्नि संस्कार कर दिया जाय। इसलिए कल्याणगढ़ गया भी था। परन्तु मुगल सिपाहियों ने पहले ही दुर्गादास का घर ही नहीं, सारा कल्याणगढ़ ही फूंक दिया था। अपने गांव की दशा देख, बेचारे की आंख में आंसू भर गये। थोड़ी देर मौन खड़ा रहा। फिर क्रोध में आकर बोला भाइयों! जब कोई अपराध न करने पर शत्रुओं ने मां जी को मार डाला, घर-बार लूट लिया और गांव जला दिया, तो फिर उससे मेल की क्या आशा की जा सकती है। ऐसे हत्यारों से मेल करके हम मारवाड़ को अपमानित नहीं कर सकते। हमारा धर्म केवल पहाड़ियों में छिपकर जान बचाना ही नहीं है। अब तो गांव-घर न होने पर मारवाड़ ही हमारा घर है; वृद्धा मां जी की जगह मारवाड़ की पवित्र भूमि ही हमारी माता है; इसलिए जब तक अपनी माता के संकटों को दूर न कर लूंगा, (म्यान से तलवार निकालकर) तब तक म्यान से निकली हुई तलवार फिर म्यान में न रखूंगा।

यह प्रण करके वीर दुर्गादास अपने बेटे, भाई और थोड़े-से राजपूतों को साथ ले अरावली पहाड़ की ओर चला गया।

वीर दुर्गादास से विदा होकर नाथू दूसरे दिन माड़ों पहुंचा। दुर्गादास का सेवक जानकर द्वारपाल उसे महाराज महासिंह के पास ले गया। महासिंह ने नाथू को आदर के साथ बैठाया, और वीर दुर्गादास का सन्देश सुना। थोड़ी देर उदास मन हाथ-पर-हाथ धारे बैठे रहे। फिर बोले नाथू! बड़े दुख की बात है कि जिसके लिए दुर्गादास ने मुगलों

से बैर किया, वह राजसुख भोगे! धिक्कार है ऐसे जीवन पर! अपने प्राण बचाने वाले की नेकियों का कुछ भी बदला न दे सका। नाथू, मैं कल ही तुम्हारे साथ चलूंगा।

महासिंह की स्त्री तेजोबाई, जो वहीं बैठी-बैठी यह कथा। सुना रही थी, बोली महाराज! दुर्गादास की सहायता का विचार भूलकर भी न करना। अभी आपके घाव भी अच्छे नहीं हुए और फिर मुगलों का सामना करने का साहस करने चले। मैं नहीं जानती, आप मुठ्ठीभर राजपूत लेकर इतने बड़े मुगल बादशाह का सामना क्योंकर करोगे? पतिंगों के समान दीपक में जल मरना कोई चतुराई है? दुर्गादास ने बैर करके क्या लाभ उठाया? परोसी हुई सोने की थाली में लात मत मारी। जोरावर खां को मारकर कौन सुख पाया? यही न कि घर-बार लुटवाया, मां जी की हत्या कराई और अब जंगलों-पहाड़ों की हवा खाते फिरते हैं। क्या आप भी ऐसे सिरफिरों की सहायता करके राज्य खोना चाहते हैं? ये वाक्य महासिंह के कलेजे में तीर की तरह लगे। परन्तु घर में ही फूट न पैदा हो जाय, इसलिए क्रोध न किया। बोला तेजोबाई! क्या दुर्गादास सिरफिरा है, जिसने तेरी बेटी की लाज रखी और सुहाग रक्षा की? दुर्गादास ने बेटों की लाज रखी और सुहाग की रक्षा की? दुर्गादास ने अपने लिए नहीं, किन्तु मेरे प्राणों को बचाने के लिए मुगलों से बैर बसाया। यदि जोरावर खां मारा न गया होता, तो आज तेरी बेटी लालवा की ईश्वर जाने कौन दशा होती। हां! समय निकल जाने पर तू ऐसे वीर पुरुष को मूर्ख कहती हैं! धिक्कार है, तुझे और तेरे जन्मदाता को। ब्रह्मा को तुझे क्षत्रणी न बनाना था। तेजबा राजसुख की भूखी थी, उसे महासिंह की सिखावन कैसे अच्छी लगती? उठकर दूसरी जगह चली गई; और अपने भतीजे मानसिंह को बुलाकर कहा – ‘बेटा, अपने काका को समझा दो, बैठे-बैठाये दूसरे का झगड़ा अपने सिर न लें। इसमें कोई भलाई नहीं। मानसिंह ने कहा – ‘काकी, यह दूसरे का झगड़ा नहीं। यह अपना ही है। वीर दुर्गादास ने मुगलों से जो बैर बढ़ाया, वह हमारे ही कुल की लाज रखने के लिए। इसमें दुर्गादास का क्या स्वार्थ? दुखियों की सहायता करना राजपूतों का धर्म है। फिर दुर्गादास तो हमारे लिए कष्ट सहता है, यदि उसकी सहायता न की जाय तो काकी, क्या हमारी राजपूती में कलंक न लगेगा? यदि काका का जाना तुम्हें अच्छा न लगता हो, तो मैं चला जाऊंगा।

मानसिंह काकी से विदा हो, महासिंह के पास आया, और बोला काकाजी! अभी आपके घाव अच्छे नहीं हुए हैं; इसलिए आप अपने लश्कर का सरदार मुझे बनाकर दुर्गादास की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दीजिए। मानसिंह अपने भतीजे के साहस पर बड़े प्रसन्न हुए और तीन सौ वीर राजपूतों को बुलाया। महासिंह ने उनके सामने खड़े होकर कहा – ‘भाइयों, मैं किसी राजपूत को उसकी इच्छा बिना ही अपने स्त्री-पुत्र अथवा अपने प्राणों का मोह हो, तो अच्छा है कि वह अभी से अपने घर चला जाय। सबल शत्रु के सामने भागकर राजपूतों की हंसाई न करे। शूरवीरों ने कहा – ‘महाराज! देश को स्वतन्त्रा किये बिना आगे बढ़ा हुआ पैर अब पीछे नहीं पड़ सकता। मरने पर स्वर्ग, और जीते रहने पर सुख और यश, सब प्रकार भलाई है। मानसिंह वीरों को उत्साहित देख बड़े प्रसन्न हुए। तुरंत तीन सौ की तीन टोलियां बनाईं। एक टोली रूपसिंह उदावत के साथ भेजी। और दूसरी टोली मोहकमसिंह मैड़तिया के साथ किसी दूसरे की मार्ग से भेजी। थोड़े-थोड़े राजपूतों को पृथक्-पृथक् मार्गों से भेजने का कारण था, कि इतने हथियारबंद राजपूतों को एक साथ जाते हुए, देखकर मुगलों को सन्देह अवश्य होगा। रोक-टोक में मारकाट तो राजपूतों के लिए अनहोनी बात थी ही नहीं, उसका फल यह होता कि अपने काम में बाधा पड़ती। और दुर्गादास की सहायता करना तो दूर रहा, अपनी रक्षा कठिन होती। इन्हीं अड़चनों के बचाव के लिए दो टोलियां पहले भेज दी, और तीसरी टोली मानसिंह ने अपने साथ ले जाने के लिए रोक ली।

झुटपुटा ही चला था। मानसिंह तेजवा और लालवा से विदा होकर बाहर आये। चाहते थे, कि राजपूतों को चलने की आज्ञा दें, अचानक दक्षिण की ओर देखा, तो काले बादलों के समान हवा में उड़ते हुए मुगल सिपाही आ रहे थे। देखते ही मानसिंह खबर देने भीतर गया। इधर मुगलों ने गढ़ी घेर ली। राजपूत लड़ाई के लिए तो सजे खड़े ही थे, भिड़ गये और घमासान मारकाट होने लगी। मानसिंह ने कहा – ‘बेटा मानसिंह! जैसे बने, वैसे लालवा को यहां से निकाल ले जाओ, हम केवल कुल में कलंक ही लगने को डरते हैं, मरने को नहीं। मानसिंह झपटकर लालवा के पास पहुंचा और समझा-बुझाकर उसे सुरंग वाली कोठरी में ले गया। लालवा बोली भाई! वृद्ध नाथू को किसी प्रकार बचाना चाहिए। मानसिंह ने लालवा से कहा – ‘अच्छा बहन! तुम यहीं खड़ी रहो, मैं नाथू के लिए जाता हूं। यदि मेरे आने में देर हो, तो सीधी चली जाना, थोड़ी ही दूर पर तुमको महेन्द्र नाथ बाबा की मढ़ी मिलेगी। तुम वहां बाबा के पास ठहरना, मैं आ जाऊंगा। मानसिंह सुरंग का मुंह बन्द कर बाहर आया। देखा तो मुगल सिपाही गढ़ी के चारों ओर भर गये। चन्द्रसिंह, जो लालवा की सुन्दरता पर मोहित था, पागलों के समान कोठरी-कोठरी में लालवा की ही खोज कर रहा था। मानसिंह एक झरोखे से छिपकर देख रहा था, अचानक तीन सिपाही इधर ही पहुंचे गये। मानसिंह ने तुरन्त ही तीनों को यमपुर भेज दिया और वहां से हटकर दूसरी ओर चला। यहां भी एक मुगल सिपाही दीख पड़ा। मानसिंह उसे मारना ही चाहता था। कि किसी ने पीछे से कहा – ‘हां, हां, यह खुदाबखश है। हाथ रोक लिया। मुड़कर देखा, तो नाथू खड़ा था। तुरन्त ही तीनों मिलकर सुरंग में उतरे। लालवा अभी यहीं खड़ी थी। पुकारा भाई मानसिंह! क्या नाथू को ले आये? नाथू ने कहा – ‘हां बेटा, मैं कुशल से हूं और खुदाबखश को साथ ले आया हूं। लालवा ने चलते-चलते पूछा नाथू! हमारे माता-पिता की क्या दशा होगी? नाथू ने कहा – ‘बेटा! मेरे ही सामने पकड़े गये थे। इसके बाद क्या हुआ मैं नहीं जानता, मुझे तो महाराज ने भाग जाने का संकेत किया। मैं उनका अभिप्राय समझकर भागा। बेटा! अपने लिये नहीं; किन्तु लोहे वाली सन्दूक के लिए।

खुदाबखश ने कहा – ‘बेटा लालवा अपने माता-पिता की चिन्ता मत करो। मैं मुसलमान हूं; इसलिए अपने पकड़े जाने का भय तो था। ही नहीं, वहीं खड़ा रहा और सबकी सुनता रहा। थोड़ी ही देर में सारा भेद खुल गया। देशद्रोही चन्द्रसिंह ने मंगनी के लिए महाराज को एक पत्र लिखा था। कदाचित् यह बात तुझे न मालूम हो, महाराज उस दुष्ट स्वभाव से परिचित थे, इसलिये उसकी विनय पर जरा भी ध्यान न दिया। उसी बात पर चन्द्रसिंह ऐंठ गया और महाराज को नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगा। दैवयोग से किसी प्रकार उसे नाथू का आना और वीर दुर्गादास की सहायता के लिए यहां से राजपूतों को भेजा जाना मालूम हो गया। तुरन्त मुगल सरदार इनायतखां के पास दौड़ा गया और महाराज को राजद्रोही बताकर माझों पर चढ़ाई कर दी। यह सब था। तेरे ही लिए; परन्तु ईश्वर की कृपा थी, कि तू उस देशद्रोही दुष्ट के हाथ न लगी, नहीं तो आज बड़ी खराबी होती। जब लाख ढूँढ़ने पर भी चन्द्रसिंह ने तेरा पता न पाया, तब तेरे माता-पिता को पकड़कर सोजितगढ़ में रखने का विचार किया, ईश्वर ने चाहा तो दो ही तीन दिन में वे छूट जायेंगे।

सुरंग समाप्त हो गई, तो मानसिंह ने आगे बढ़कर सुरंग का मुंह खोला और एक-एक करके सबको बाहर निकाला। मढ़ी में मनुष्यों की आहट पाते ही बाबा महेन्द्रनाथ जी आ पहुंचे। सबों ने उठकर प्रणाम किया। बाबाजी ने आशीर्वाद दिया। मानसिंह ने पूछने के पहले ही मुगलों का धावा और भागने का कारण कह सुनाया। बाबाजी ने लालवा की ओर देखा और उसकी पीठ पर हाथ फेरकर बोले बेटा! अब किसी बात की चिन्ता न करो। यहां आनन्द से रहो, तुम्हारे लिए अभी एक दासी बुलाये देता हूं। बेटा, यहां किसी की सामर्थ्य नहीं, कि तुम्हें कष्ट पहुंचा सके। बाबाजी ने सबको ढाढ़स दिया और सोने के लिए स्थान बताकर दूसरी मढ़ी में चले गये। डर और चिन्ता में नींद कहां? जैसे-तैसे रात कटी, सबेरा हुआ, खुदाबखश ने जाने की आज्ञा मांगी। बाबा महेन्द्रनाथ ने कहा – ‘बेटा! ऐसे

उतावले क्यों हो रहे हो? चले जाना। खुदाबख्श ने कहा – ‘ बाबाजी, मुसलमान हूँ; इसलिए मुझे मुसलमानों को अत्याचार करते देख लाज लगती है। सच्चे मुसलमान का धर्म नहीं कि दूसरे की मां-बेटी का सतीत्व नष्ट करें; दुखियों को सतायें। बहादुर सिपाही कहलाकर अबलाओं पर हाथ उठायें। अब मुझे क्षमा कीजिए और आज्ञा दीजिए, जहां तक हो सके, इस देश से शीघ्र ही चला जाऊं। फिर वह मानसिंह से बड़े प्रेम के साथ गले मिला। दोनों ने परस्पर तलवारें बदली और खुदाबख्श बाबाजी को प्रणाम कर चल दिया। थोड़ी दूर चलकर पीछे मुड़ा और बोला भाई मानसिंह! हमारी तलवार से किसी प्राणों की भिक्षा मांगने वाले कायर को न मारना। मानसिंह की आंखों में आंसू आ गये। खड़े-खड़े एकटक इस सच्चे मुसलमान सिपाही की ओर देखते रहे, जब तक आंखों से ओझल न हो गया।

अभी बाबा महेन्द्रनाथ, नाथू, लालवा और मानसिंह बैठे खुदाबख्श ही की बातचीत कर रहे थे, कि देखा कुछ मुगल सिपाही एक राजपूत को बड़ी निर्दयता से मारते हुए लिए जा रहे हैं। बाबाजी से देखा न गया। स्वभाव दयावान् था। दौड़कर पूछा भाई, इस बेचारे को क्यों मार रहे हो? सिपाहियों ने कहा – ‘ बाबाजी! राजद्रोही महासिंह का पक्षपाती है, इसके पास महासिंह की अंगूठी भी है। बाबा महेन्द्रनाथ ने कहा – ‘ यह कोई प्रमाण नहीं। थोड़ी देर के लिए मान लो, इसने अंगूठी किसी से छीन ली हो अथवा महासिंह ने ही दे डाली हो, या चुरा लाया हो, तो इस पर महासिंह का पक्षपाती होने का दोष कैसे लग सकता है? तुम्हारे धर्म-ग्रन्थ कुरान में किसी निर्दोष को मारना महापाप लिखा है। इसलिए इसे अभी छोड़ देंगे। बाबाजी की बातें सरदार को जंच गई, और राजपूत को छोड़ दिया।

बाबाजी राजपूत को अपनी मढ़ी में ले गये और पूछा बेटा, यह मानसिंह की अंगूठी कहां से ले आये और कहां लिये जा रहे थे? राजपूत ने कहा – ‘ स्वामीजी! आपने हमारे प्राण बचाये हैं इसलिए आप पर भरोसा करना तो उचित है ही; परन्तु आप ही प्राण क्यों न ले लें, उस समय तक कुछ न बताऊंगा जब तक मुझे यह विश्वास न हो जायेगा, कि आप हमारे हितू हैं। राजपूत की आवाज नाथू को कुछ पहचानी हुई जान पड़ी। बाहर आया, देखते ही राजपूत ने पहचान लिया और बोला नाथू! तू यहां क्या कर रहा है? महासिंह ने दुर्गादास की सहायत करने का कोई प्रबंधा किया या नहीं? नाथू अचम्भे में आकर बोला क्या सहायता नहीं पहुंची? कल ही दो सौ की दो टोलियां भेजी गई हैं। राजपूत ने कहा – ‘ नहीं नाथू! अभी कोई नहीं पहुंचा! मुसलमानों ने चारों ओर से घेर लिया है। अब कहीं भोजनों का भी ठिकाना नहीं। यदि दो दिन और यों ही बीते तो फिर मारवाड़ सर्वनाश हो जायगा। बाबा महेन्द्रनाथ ने गरज कर कहा – ‘ क्यों निराश होते हो? मारवाड़ स्वतंत्र होगा और वीर दुर्गादास का मनोरथ सफल होगा। पुरुष हो पुरुषार्थ करो, आज ही रात को अपने काका कल्याणसिंह के पास जाओ और जो कुछ सहायता मिल सके, लेकर अरावली पहुंचो। तुम्हारी जय होगी।

बाबा महेन्द्रनाथ की आज्ञानुसार मानसिंह और करणसिंह बहन लालवा से विदा हो लगभग आधी रात को कल्याणसिंह के घर पहुंचे। देखा तो चौकीदार भी बेखबर सो रहे थे। जगाया, तो एक-एक करके सभी जग पड़े। ठाकुर घबरा उठे। पूछा बेटा मानसिंह! कुशल तो है, कैसे आये! मानसिंह! पैर छूकर बैठ गया और बोला काकाजी, क्या आपने माइं के समाचार नहीं सुने! दुष्ट चन्द्रसिंह अपने साथ सरदार इनायत खां को लाया और गद्दी लुटवा ली, काका और काकी को पकड़ ले गया। यह सब कुछ बहन लालवा के लिए था। वीर दुर्गादास ने भी लालवा तथा। काका की रक्षा के लिए ही जोरावर खां को मारा था।, जिसका फल अब भोग रहा है। घर लुटा, गांव जला, मां जी की हत्या हुई, अरावली की पहाड़ी में जा छिपा वहां भी सुख नहीं। चारों ओर से मुगलों ने घेर रखा है; इसलिए काका जी, हम चाहते हैं कि ऐसे उपकारी पुरुष की आप ही कुछ सहायता करें। कल्याणसिंह ने कहा – ‘ बेटा, यह तो सच

है; परन्तु हमारा छोटा-सा गांव है, कहीं औरंगजेब को मालूम हो गया तो सत्यानाश कर डालेगा, हम कहीं के न रहेंगे। डर तो यही है। मानसिंह ने कहा – ‘काकाजी! राजपूत कभी इतना डरकर तो नहीं रहे, जितना आप डरते हैं। देश की स्वतन्त्रता पर मर मिटना राजपूतों का धर्म ही है और यदि आप हिचकते हैं तो आप स्वयं युद्ध के लिए न जाइए, थोड़े से वीर राजपूत जो आपकी आज्ञा में हों, सहायता के लिए भेज दीजिये। इसमें आप पर किसी प्रकार का दोष नहीं लगाया जा सकता है। मानसिंह के समझाने और हठ करने पर कल्याणसिंह ने साठ राजपूतों को दुर्गादास की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दी। मानसिंह दूसरे दिन शाम को साठ राजपूतों को साथ लेकर अरावली की ओर चला।

5

कंटालिया के सरदार शमशेर खां के मारे जाने की खबर पाते ही औरंगजेब आपके में न रहा, तुरन्त आज्ञा दी दुर्गादास को जैसे हो सके, पकड़कर हमारे सामने लाया जाय, जीता हुआ या मरा हुआ, जैसा भी हो। दूसरे ही दिन मुगलों के चारों ओर से अरावली को घेर लिया। ऊपर चढ़कर राजपूतों का सामना करने का कोई साहस न करता था, इसलिए भूखों ही मार डालने की सलाह हुई। पहाड़ी पर न किसी को न आने दें। और न जाने दें। यहां तक कि लोथ भी खोलकर देख लेते थे। बेचारे दुर्गादास और उसके साथी राजपूतों को कन्दमूल भी खाने के लिए मिलना कठिन हो गया। आज तीन उपवास हो चुके थे। दुर्गादास अपने साथी राजपूतों का कष्ट न देख सका। बोला भाइयो! आज नाथू को गये चार दिन हुए; परन्तु न आप ही आया और न सहायता के लिए कोई राजपूत ही भेजा। ठीक है, वह किसे भेजता, वह तो मानसिंह के पास भीख मांगने गया था। भाइयो! एक समय था, जब राजपूतों की वीरता संसार में बखानी जाती थी और थोड़े ही दिन हुए महाराज जसवन्तसिंह के मरने के बाद बीस हजार मुगल सिपाहियों पर ढाई सौ राजपूत टूट पड़े थे। अब आज वही राजपूत मुट्ठी भर मुगलों से डरकर घर से नहीं निकलते। भाइयो! अच्छा होगा कि तुम भी अपने-अपने घर जाओ, मुझे और मेरे अभागे देश को भगवान के भरोसे छोड़ दो। मेरे साथ क्यों भूखे मरोगे? मैं तो जो प्रण कर चुका, वह कर चुका। रहूंगा, तो स्वतन्त्र होकर, नहीं तो भू-माता के लिए लड़कर सदैव के लिए माता की पवित्र गोद में सोया रहूंगा।

दुर्गादास को उदास देखकर, राजपूतों ने उत्तोजित होकर कहा – ‘महाराज, जो आपका प्रण। जहां महाराज, वहीं हम। जब तक मारवाड़ स्वतन्त्र न कर लेंगे, जीते जी घर न लौटेंगे।

भूखों मरते हुए राजपूतों का ऐसा साहस देख, वीर दुर्गादास की मुर्झाई हुई आशा-लता एक बार फिर हरी हो गई। मुख पर प्रसन्नता झलक उठी। बोला अच्छा, तो भूखों मरने से लड़कर ही मरना अच्छा। सहायता मिले या न मिले! चलो, इस पहाड़ी के नीचे उतरें।

यह रास्ता बड़ा बीहड़ था। मनुष्य तो क्या, पशु भी जाते डरते थे, परन्तु मरता क्या न करता। वही कहा – ‘वत थी। लोग नीचे उतरने लगे। इतने में दुर्गादास ने ‘राम नाम सत्य है, सुना, वहीं ठहर गये। देखा, तो सामने से चार आदमी एक अर्थी ला रहे हैं; उसके पीछे एक आदमी अधाजला कंडा और एक हांडी लटकाये है। पीछे-पीछे लगभग सौ आदमी और हैं, और सब-के-सब इधर ही आ रहे हैं। दुर्गादास को सन्देह हुआ कि श्मशान तो उधर है, यह सब हमारी ओर क्यों आ रहे हैं? जब उन आदमियों ने अर्थी वीर दुर्गादास के सामने उतारी और लगे खोलने तो दुर्गादास और भी चकराया। सोचने लगा है भगवान! यह बात क्या है? अर्थी खुलते ही एक वीर राजपूत उठकर दुर्गादास के पैरों पर गिर पड़ा। दुर्गादास ने आशीर्वाद देकर पूछा भाई, तुम कौन हो? यह सब मैं कौतुक देख रहा हूं या स्वप्न?

रूपसिंह उदावत ने, जो पीछे रह गया था।, आगे बढ़कर राम-जुहार की और बोला महाराज! इस वीर राजपूत का नाम गंभीरसिंह है, आपके पास आने के लिए इधर-उधर विकल घूम रहा था।, दैवयोग से यह हमें मिला। हम लोग भी इसी की भांति व्याकुल थे। क्या करते? चारों ओर से मुगलों ने पहाड़ी को घेर रखी है। गंभीरसिंह ने यही उपाय सोचा और ऐसी सांस चढ़ाई कि तीन जगह खोलकर देखने पर भी मुगलों को सन्देह न हुआ। सच पूछिए तो आपकी सहायता पहुंचाने वाला महासिंह नहीं; किन्तु गंभीरसिंह ही है।

दुर्गादास ने गंभीरसिंह को छाती से लगा लिया और कहा – ‘ बेटा गंभीरसिंह! आज से हमें विश्वास हो गया कि मारवाड़ देश तेरा आजीवन ऋणी रहेगा। तेरी चतुराई, साहस और परिश्रम के बल पर ही मारवाड़ स्वतंत्र होगा, रूपसिंह उदावत ने कहा – ‘ महाराज! सूर्य अस्त हो चुका,मार्ग अटपट है, अंधोरा हो जाने से कष्ट की सम्भावना है इसलिए जहां तक हो सके, शीघ्र ही चलिए। राजपूत भी भूखे हैं और इस मार्ग की रोक पर मुगल भी इने गिने हैं। बस थोड़ा ही परिश्रम करने पर पौ बारह है। वीर दुर्गादास की आज्ञा पाते ही राजपूत पहाड़ी से उतरे और भूखे सिंह के समान मुगलों पर टूट पड़े। क्षण मात्र में ही वीर राजपूतों ने सैकड़ों मुगलों का सिर धड़ से अलग कर दिया। इतने मुगलों में कोई बेचारा घायल भी न बचा कि अपने सरदार को खबर देता।

वीर दुर्गादास अब निश्चिन्त था।, किसी प्रकार की बाधा दिखाई न देती थी। अरावली की पहाड़ियों को पार करके लोग एक मैदान में यह सलाह करने के लिए जमा हुए कि अब क्या करना चाहिए? कहां चलना चाहिए? एकाएक किसी की आवाज ने सबको चौंका दिया....'अरे दुष्ट। मुझे क्यों मारता है? क्यों नष्ट करता है? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? अरे, रक्षा करो, कोई बचाओ। पापी, अबला पर क्या बल दिखाता है?अच्छा, मुझे भी तलवार दे, वीर दुर्गादास उधर ही दौड़ा, जिधर से यह आवाज आ रही थी। पीछे-पीछे गंभीरसिंह और जसकरण भी थे। दुर्गादास ने यह देखा कि एक अबला पर एक पुरुष बलात्कार करना चाहता है; परन्तु अन्धाकार के कारण पहचान न सका। डपटकर पूछा तू कौन है? मैं क्या कर कहा – ‘ हूं, तुझसे प्रयोजन? दुर्गादास ने कहा – ‘ क्या सीधे न बतायेगा? इतना कहना था। कि तलवार खींच सामने आया और चाहता था।, कि दुर्गादास पर वार करे, इसके पहले ही गंभीरसिंह ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। दुर्गादास ने स्त्री से पूछा बेटी, तुम कौन हो और यह दुष्ट कौन था।? इसने तुमको कहां पाया? बेटी ने कहा – ‘ पिताजी, मैं माझों के राजा महासिंह की कन्या लालवा हूं और यह पापी चन्द्रसिंह था।अपने किये का फल पा गया। दुर्गादास ने पीछे किसी की आहट पाई, मुड़कर देखा, जसकरण और गंभीरसिंह दौड़े जा रहे हैं। दुर्गादास हाथ में तलवार लिये लालवा की रक्षा के लिए वहीं खड़ा रहा। थोड़ी देर में गंभीरसिंह और जसकरण हाथों में बागडोर पकड़े पांच घोड़े ले आये और बोले महाराज! इस पापी के तीन साथी और थे। हमने उन्हें देख लिया और पीछा किया। घोड़ों पर चढ़कर भाग जायें परन्तु यह कैसे होता? उन्हें तो मौत खींच लाई थी। वे तो नरक गये और घोड़े आपके लिए छोड़ गये।

लालवा ने गंभीरसिंह को बोली से पहचाना और पुकारा भाई गंभीरसिंह! क्या आपत्ति में आप भी हमको नहीं पहचानते? गंभीरसिंह ने कहा– ‘ कौन लालवा! अरी, तू यहां पापियों में कैसे आ फंसी? लालवा ने कहा – ‘ माता तेजबा के कारण! भाई, तेजबा मैं क्षत्रणी की कुछ भी ऐंठ नहीं, वह सदैव राज-सुख की भूखी रहती है। कदाचित पापी चन्द्रसिंह ने किसी प्रकार लालच देकर तेजबा को फंसाया लालवा मेरी अंगूठी पाकर अवश्य ही अंगूठी देनेवाले के साथ चली जायेगी। गंभीरसिंह ने कहा – ‘ बहन लालवा! यह कैसे विश्वास किया जाय, कि तेजबा और काका महासिंह को पकड़ लिया, तो हो सकता है कि अंगूठी उतार ली हो। लालवा ने कहा – ‘ नहीं, मान लिया जाय कि चन्द्रसिंह ने अंगूठी छीन ली थी, तो हमारा पता कैसे पाता, कि मैं सुरंग से बाबा महेन्द्रनाथ की गढ़ी में पहुंची,

और वहीं रही। भाई ऐसे तर्कों से मुझे विश्वास हो गया कि तेजबा के सिवाय दूसरे ने कपट नहीं किया। गंभीर बोला अच्छा लालवा, यह तो बता कि जब तू चन्द्रसिंह को पहचानती थी, और उसके स्वभाव से परिचित थी, तब उसके मायाजाल में क्यों फंसी! लालवा बोली भाई, तेजबा की अंगूठी ले जाने वाला कोई दूसरा ही राजपूत था। उसने जाकर कहा – ‘ कि तेजबा ने लालवा को बुलवाया है; क्योंकि महासिंह बहुत दुखी और यही चाहते हैं कि लालवा उनकी आंखों के सामने रहे। तो मैं मोह से अन्धी हो गई। विश्वास के लिए अंगूठी थी ही। बस बाबा महेन्द्रनाथ से विदा हो, इस पापी के साथ चल दी। इसके बाद इस विपत्ति में आ फंसी। ईश्वर ने पापियों की इच्छा पूरी होने के पहले ही रक्षा के लिए आपको भेज दिया।

वीर दुर्गादास ने उसे धैर्य दिलाते हुए कहा – ‘ बेटी! अब मैं तुझे ऐसे अच्छे और सुरक्षित स्थान में रखूंगा, जहां किसी प्रकार की शंका न होगी। लालवा ने कहा – ‘ नहीं, अब मैं कहीं भी अकेली नहीं रहना चाहती। यदि आप मेरी रक्षा करना चाहते हो तो अपने साथ रहने दें। मैं भी अब सिपाहियों के भेष में रहूंगी; यथा शक्ति आपकी सहायता करूंगी। मुझे इससे अच्छा अब अपनी रक्षा का उपाय नहीं सूझता। दुर्गादास एक बालिका में इतना साहस देख बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे अपने साथ रखना स्वीकार कर लिया। गंभीरसिंह ने चन्द्रसिंह के कपड़े उतार दिये और लालवा तुरन्त ही एक वीर राजपूत बन गई। हाथ में तलवार पकड़ी और घोड़े पर सवार हो दुर्गादास के पीछे-पीछे चल दी। थोड़ी दूर चलने पर किसी के आने की आहट मिली। गंभीरसिंह बड़ा साहसी था। तुरन्त ही आगे बढ़ा। देखा कि लगभग पचास-साठ मनुष्य इधर ही चले आ रहे हैं। अब चन्द्रमा का प्रकाश भी हो चला था। देखने से राजपूत ही जान पड़ते थे। पास आते ही गंभीरसिंह ने पूछा कौन? किसी ने इसके उत्तर में कहा – ‘ तुम कौन? गंभीरसिंह इस आवाज को पहचानता था।, घोड़े से उतर पड़ा। बोला भाई मानसिंह! मैं हूँ गंभीरसिंह और मानसिंह का हाथ पकड़े हुए उसे दुर्गादास के सामने ला खड़ा किया। दुर्गादास ने मानसिंह को बड़े प्रेम से गले लगाया। उसने लालवा की ओर देखा; परन्तु पहचान न सका। पूछा भाई जसकरण! यह राजपूत कौन है? जसकरण के कुछ कहने के पहले ही लालवा ने कहा – ‘ भाई मानसिंह, मैं हूँ आपकी बहन लालवा। मानसिंह लालवा की ओर बड़े आश्चर्य से एकटक देखता रहा। फिर पूछा बहन लालवा, तू यहां कैसे आई? लालवा ने आदि से लेकर अन्त तक सारी बातें फिर दुहरा दी। मानसिंह ने कहा – ‘ जो ईश्वर करता है, अच्छा ही करता है। बहन, हमने तो तुम्हारी रक्षा का उचित प्रबन्ध किया था।, परन्तु भाग्य का लिखा कैसे मिट सकता है?

जब ये लोग लश्कर में पहुंचे तो देखा कि मोहकमसिंह मेड़तिया भी उपस्थित हैं। अब तो वीरों की संख्या बहुत हो गई। मालूम होता है, मारवाड़ के भाग्य उदय हुए। दुर्गादास आशा-लता को फूलते देख बड़ा ही प्रसन्न हुआ। मोहकमसिंह से गले मिलकर बैठ गया और सलाह करने लगा। सोजितगढ़ पर चढ़ाई करने की राय ठहरी; क्योंकि महासिंह का छुड़ाना और सोजितगढ़ का अपनाना, एक पन्थ दो काज था। दुर्गादास ने वीर राजपूतों को उसी जंगल में विश्राम करने की आज्ञा दी, क्योंकि रात आंधी से अधिक बीत चुकी थी। सोजितगढ़ पहुंचने का समय न था। चढ़ाई करने की घात रात ही में थी। दिन में मुड़ी भर राजपूत थे ही क्या, जो सोजितगढ़ में मुगल सिपाहियों का सामना करते; इसलिए रात वहीं काटी। दूसरे दिन जंगलों में छिपते-छिपते पहर रात बीते सोजितगढ़ की चौहद्दी पर पहुंचे और धावा करने के समय की प्रतीक्षा करने लगे।

गंभीरसिंह बड़ा जोशीला था। देश के लिए अपने प्राण हथेली पर लिये फिरता था। दुर्गादास से बिना पूछे-पाछे गढ़ी की टोह लेने चल दिया और बारह बजने के पहले ही लौट आया। गढ़ पर जय पाने के उपाय जो कुछ सोचे थे और जो कुछ देखा था।, दुर्गादास से कह सुनाया। सबने गंभीरसिंह की बुद्धि की बड़ी बढ़ाई की और उसे कहे अनुसार

अपने राजपूत वीरों को फाटक के आस-पास लगा दिया। रूपसिंह, जसकरणसिंह, मानसिंह और तेजकरण ये चारों गंभीरसिंह के साथ, गढ़ी की पिछली दीवार के ऊपर चढ़ गये।

गंभीरसिंह ने उन चारों को तो फाटक के ऊपर वाली छत पर छिपा दिया और आप दक्खिन की ओर चला गया। कमर से चकमक निकाल कर छप्पर में आग लगा दी। अब तो जिसे देखो, वही आग बुझाने दौड़ा चला जाता है। घात पाकर चारों राजपूत कूद पड़े और गढ़ी का फाटक खोल दिया। फिर क्या था! दुर्गादास राजपूत वीरों को लेकर घुस पड़ा और लगी मारकाट होने। एकाएकी धावे ने मुगलों के पैर उखाड़ दिये। जलती आग में कौन प्राण देता है। भाग खड़े हुए। बहुतों ने हथियार छोड़ वीर दुर्गादास की शरण ली। हथियार छोड़े हुए बैरी पर सच्चे राजपूत कभी वीर नहीं करते। अस्तु, मारकाट बन्द हो गई। मानसिंह ने इनायत खां का पता लगाया। मालूम हुआ, वह पहले ही प्राण ले भागा।

गंभीरसिंह ने बादशाही झंडा उखाड़ फेंका और अपना राजपूती पचरंगा झंडा गढ़ पर फहरा दिया। जसकरण, तेजकरण तथा। रूपसिंह को गढ़ की चौकसी सौंप दुर्गादास, मानसिंह और लालवा महाराज महासिंह के पास पहुंचे। देखा, महाराज एक पलंग पर पड़े-पड़े अपने दांतों से होंठ चबा रहे हैं, और न जाने मन-ही-मन क्या सोच रहे हैं। अभी घाव भी नहीं भरे थे, कराहते हुए जो करवट बदली तो सामने इन तीनों को देखा। बोले हाय! क्या तुम भी पकड़ आये? बेटा मानसिंह! बेचारी लालवा कहां होगी? पापी चन्द्रसिंह तो उसके पीछे ही पड़ा है। हमारा तो सर्वनाश ही हो गया। हाय! मृत्यु भी रूठ गई। मानसिंह ने कहा – ‘काकाजी, पापी चन्द्रसिंह तो यमपुर पहुंच गया और लालवा यह खड़ी है। हम लोग बन्दी होकर नहीं आये हैं। वीर दुर्गादास ने माझों का नहीं सोजितगढ़ का भी राजा बना दिया। पापी इनायत खां कहीं भाग गया। अब गढ़ी पर राजपूती झंडा फहरा रहा है।

महासिंह को तो कदाचित ही कभी पहले ऐसे प्यारे शब्दों को सुनने का अवसर मिला हो, खुशी से फूला न समाया। हृदय धाड़कने लगा। तुरन्त पलंग से उठकर वीर दुर्गादास को गले लगा लिया। फिर मानसिंह और लालवा को प्यार से छाती से लगाया। तेजबा, जो इस समय दूसरे कमरे में थी, बाहर आदमियों की बोलचाल सुनकर अपने कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई और बातचीत सुनने लगी। लालवा का नाम सुनते ही चौंकी, छाती धाड़कने लगी, अपनी करतूत पर आप ही पछताने और लजाने लगी। मानसिंह ने लालवा की एक-एक बात मानसिंह से कह सुनाई। महासिंह थोड़ी देर चुप बैठा रहा। न जाने क्या-क्या सोच गया! फिर लालवा को तेजबा के पास भेज दिया। रात एक पहर से कम रह गई थी। वीर दुर्गादास ने सब थके हुए राजपूतों को विश्राम करने की आज्ञा दी। शेष रात आनन्द से कटी। सवेरा हुआ। सोजितगढ़ के आस-पास के गांवों के रहने वाले राजपूतों ने जब सोजितगढ़ पर राजपूती झंडा फहराते देख, तो बड़े आश्चर्य में आये और पता लगाने लगे। अब उन्हें अपनी विजय का विश्वास हुआ और झुण्ड-के-झुण्ड सोजितगढ़ आने लगे। जितने राजपूत सरदार दिल्ली की लड़ाई से बच आये थे, धीरे-धीरे सभी अपनी-अपनी सेना लेकर वीर दुर्गादास की सहायता के लिए इकट्ठे हो गये। अब सोजितगढ़ में चारों ओर हथियारबन्द राजपूत सेना-ही-सेना दिखाई पड़ने लगी। जिसे देखिए वह मारू राग ही गाता था। और अकेले ही दिल्ली पर जय पाने का साहस दिखाता था। वीर दुर्गादास ने राजपूतों को ऐसा उत्साही देख ईश्वर को धान्यवाद दिया और जोधपुर पर चढ़ाई करना निश्चित किया। सब सरदारों ने हां-में-हां मिलाई। जब यह बात तेजबा को मालूम हुई तो झीखने लगी। मानसिंह को अपने पास बुलाकर कहा – ‘बेटा! हमारा संदेश दुर्गादास को सुनाओ और कहो, यह कौन-सी चतुराई है कि जीतकर भी हार लेने चले हैं। इन लोगों को नाले से निकालकर अब समुद्र में डालना चाहते हैं? आप तो सोजितगढ़ छोड़कर जोधपुर युद्ध करने जाते हो, हमारी रक्षा कैसे होगी? यदि दुर्गादास

ऐसा करना ही चाहते हैं, तो हमारे पीहर भेज दें और आप जो चाहें करें। मानसिंह ने कहा – ‘काकी, यह कौन कहता है कि तुम्हें अकेले ही सोजितगढ़ में छोड़ दिया जायेगा? यहां गढ़ी की रक्षा के लिए एक हजार सेना रखी जायेगी और वीर रूपसिंह उदावत सेनानायक रहेंगे; क्योंकि अभी वे लड़ाई के योग्य नहीं हैं, यद्यपि घाव सूख गये हैं।

मानसिंह ने बहुत कुछ समझाया, परन्तु तेजबा ने अपना हठ न छोड़ा। विवश होकर मानसिंह को वीर दुर्गादास से कहना ही पड़ा। दुर्गादास ने कहा – ‘अच्छा ही है, चलो पहले, इसी काम से निपट लें। दूसरे दिन सूर्य उदय होते-होते दुर्गादास, महासिंह, जसकरण, तेजकरण, मानसिंह और गंभीरसिंह अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो तेजबा के डोले के पीछे-पीछे चल पड़े। रूपसिंह ने थोड़ी-सी सेना भी साथ जाने के लिए सजाई थी; परन्तु दुर्गादास ने उसमें से केवल पचीस विश्वासी वीरों को अपने साथ लिया और सबको सोजितगढ़ में ही रहने की आज्ञा दी। कहा – ‘र बड़े ही तेज थे, राह में केवल एक घने वृक्ष की छाया में थोड़ी देर विश्राम किया और जलपान कर थोड़ा दिन रहते-रहते तेजबा को उसके पीहर पहुंचा दिया। तेजबा का भाई पृथ्वीसिंह गढ़ी के फाटक पर ही मिला। महासिंह इत्यादि को देख घबरा उठा। पूछा जीजाजी कुशल से तो हैं? महासिंह ने पृथ्वीसिंह को सन्तोष देने के लिए संक्षेप में अपना प्राण्ारक्षक बताकर बड़ी प्रशंसा की। पृथ्वीसिंह ने बड़े प्रेम से वीर दुर्गादास को गले लगाया। और सबको आदर के साथ ले जाकर चौपाल में बिठाया। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। किसी ने गंभीरसिंह की चतुरता की बड़ाई की, तो किसी ने जसकरण की वीरता की।

पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए जब पश्चिम में सूर्य भगवान् अस्त हुए तो पूर्व में चन्द्रमा उदित हुआ। चारों ओर रूपहली चादर बिछ गई। महासिंह और दुर्गादास एकान्त में बैठकर जोधपुर पर चढ़ाई करने के उपाय सोचने लगे। इतने में एक द्वारपाल ने आकर देसुरी से आये हुए धावन की सूचना दी। वीर दुर्गादास ने उसे अन्दर बुला लिया। देखा तो गुलाबसिंह था। दुर्गादास ने पूछा क्यों गुलाबसिंह, क्या समाचार लाये? गुलाबसिंह ने कहा – ‘महाराज! आपके सोजितगढ़ फतह करने की खबर जब देसुरी में आई, तब ऐसा कोई राजपूत का घर न था।, जहां आनन्द-बधाई न बजी हो; परन्तु सरदार इनायत खां न जाने कैसे वहां पहुंच गया। यह उत्सव देखकर जल उठा। सब सिरमौर राजपूतों को अपने दरबार में बुला भेजा। किसी कारण आपके ससुर ठाकुर नाहरसिंह और हमारे पिता को देर हो गई। इनायत खां ने और सब दरबारियों को बहुत तरह की धामकी देकर विदा किया, परन्तु इन दोनों को थोड़ी देर ठहरने को कहा – ‘। दोनों ठहर गये सरल स्वभाव वीर पुरुष भला यह क्या जानते थे कि छली इनायत आपका बैर उन बेचारों से लेना चाहता है? जब इनायत खां ने देखा कि सब राजपूत चले गये, तो उन बेचारों पर बलवा का अपराधा लगाया और उनके सिर कटवा लिये। मैंने जब यह समाचार सुना तो तुरन्त सोजितगढ़ दौड़ गया। वहां मालूम हुआ, आप वालू में हैं! उलटे पैरों यहां भागता आया। ईश्वर की कृपा थी कि आपसे भेंट हो गई। अब आप जो उचित समझें करें।

देसुरी के समाचार सुनकर वीर दुर्गादास मारे क्रोध के कांपने लगे और बोले जसकरण! तुम अभी जाओ और सोजितगढ़ से अपना लश्कर लेकर बारह बजे के पहले देसुरी पहुंचो। मैं दुष्ट इनायत को आज ही यमपुरी भेजूंगा। गुलाबसिंह ने कहा – ‘महाराज! ठाकुर रूपसिंह उदावत ने जिस समय देसुरी की खबर सुनी थी, उसी समय उन्होंने लगभग एक हजार वीरों को आपकी सहायता के लिए वाली भेजा है। कदाचित वे सब आ भी गये हों। वीर दुर्गादास जैसे ही द्वार पर आये, राजपूतों के जय-जयकार के शब्द से आकाश गूंज उठा मरुदेश स्वतन्त्र हो! वीर दुर्गादास की जय हो! वीर दुर्गादास सबों को यथोचित सम्मान दे, घोड़े पर सवार हो लश्कर के आगे-आगे चले।

पीछे जसकरण, तेजकरण, मानसिंह तथा। गंभीरसिंह इत्यादि चले। जब गांव थोड़ी दूर रह गया तो दुर्गादास ने अपने वीरों को दबे पांव चलने की आज्ञा दी, जिसमें किसी को कानों-कान खबर न हो और पापी इनायत का घर घेर लिया। वीरों ने वैसा ही किया। दूसरों को तो क्या, अपनी चाप आप ही न सुन सकते थे। चारों ओर सन्नाटा छा गया। अब धीरे-धीरे लश्कर गांव में पहुंच गया। एकाएक दुर्गादास ने किसी के रोने की आवाज सुनी। मानसिंह को आगे बढ़ने की आज्ञा दे, आप उस ओर चला, जिधर रोने की आवाज आ रही थी। घर का द्वार खुला था। भीतर चला गया। देखा तो सामने एक मुरदा पड़ा था। और सिरहाने एक बुढ़िया सिर पीट-पीटकर रो रही थी। दुर्गादास को देखते ही और फूट-फूटकर रोने लगी। दुर्गादास ने बुढ़िया से रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने कहा – ‘बेटा, मैं तेरी स्त्री की धाय हूं। छुटपन में मैंने जो दूध पिलाया है, आज उसके बदले में अपने स्वामी का बदला मुगलों से लेने तुमसे मांगती हूं। वीर दुर्गादास ने बुढ़िया के सामने मुगलों से बदला लेने का प्रण किया और वहीं चिता बनाकर मुरदे का अग्निसंस्कार कर दिया। तब एक जलता हुआ चैला चिता से निकाल, इनायत के घर की ओर चल दिया। रास्ते में गंभीरसिंह मिला। दुर्गादास के हाथ में एक परचा देकर बोला महाराज, यह किले की सामने वाली दीवार में चिपका हुआ था। मैं इसे आप ही को दिखाने के लिये उखाड़ लाया हूं। देखिए, इसकी एक तरफ उन राजपूतों के नाम हैं जो मारे जा चुके हैं और दूसरी तरफ उनके नाम हैं, जो पकड़े गये हैं और जिन्हें अब फांसी की आज्ञा होगी। महाराज, अब मुझसे रहा नहीं जाता। देखिए, इस सूची में हमारे वृद्ध पिता केसरीसिंह का भी नाम है। यद्यपि सभी राठौर हमारे लिए पिता के समान हैं और कारागार में दशा भी सबकी एक-सी है, तथापि मैं अपने पिता के दुख को औरों के देखते अधिक समझता हूं; क्योंकि मैं अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध, देश सेवा के लिए एक वर्ष से अधिक हुआ, घर से निकला था। और अभी तक उनके पास नहीं गया। कुटुम्ब की देखभाल के लिए मैं या मेरे पिताजी ही थे, इसलिये पहले तो पिताजी को मेरी ही चिन्ता थी, अब अपनी और कुटुम्ब की भी हो गई। दुर्गादास ने कहा – ‘बेटा! धैर्य धरो, जिस ईश्वर ने सोजितगढ़ सर कराया है, वही देसूरी पर भी विजय दिलायेगा। और तुम्हारे पिता को नहीं, किन्तु मारवाड़ देश को ही मुगलों से मुक्त करायेगा। चलो इनायत को आज ही उसके कर्मों का प्रतिफल दें।

यह कहकर दुर्गादास किले की पिछली दीवार के पास पहुंचा। मालूम हुआ कि राजपूतों ने फाटक तोड़ डाला और गढ़ी में घुस गये: गंभीरसिंह भी उसी तरफ लपका। शामत का मारा, इनायत फाटक पर ही मिल गया, चाहता तो था। कि कहीं प्राण लेकर भाग जाय; परन्तु होनी कहां टल सकती है? गंभीरसिंह के पहले ही वार से अधामरा हो गया, उस पर वीर दुर्गादास ने जलता हुआ चैला उसके मुंह में घुसेड़ दिया। इनायत के प्राण-पखेरू उड़ ही गये। अब था। कौन जो मुगल-सेना को उत्साह दिलाता? आधी मुगल-सेना को वीर राजपूतों ने तलवार के घाट उतार दिया। बचे-बचाये वीर दुर्गादास की शरण में आये। वीर राजपूतों ने सबको प्राणदान दे दिया। मानसिंह और गंभीरसिंह दौड़ते हुए कारागार की ओर गये। शमशेर खां ने जो वहां का मुखिया था, इन दोनों को आते देख, बिना कहे ही द्वार खोल दिया। दोनों अन्दर चले गये। गंभीरसिंह ने अपने पिता को देखा। पैरों पर गिर पड़ा। केसरीसिंह ने साल-भर बिछड़े हुए बेटे को प्रेम से छाती से लगा लिया और आनन्द के आंसुओं से उसका मुंह धो दिया। दोनों ही का गला रुंधा गया था। किसी के मुंह से थोड़ी देर तक शब्द भी न निकला। एक दूसरे को एकटक देखते रहे। अन्त में केसरीसिंह ने अपने को बहुत कुछ संभाला, परन्तु फिर भी आंसू न थमे। रोते हुए बोले बेटा गंभीर! तुम्हारे छिपकर भाग जाने के बाद से आज तक मुझे केवल यही सन्देह था। कि न जाने तुम कुशल से हो या नहीं, इसलिये इतना दुख न था।, परन्तु आज तुम्हें अपनी आंखों से अपने ही समान दशा में देख दारुण दुख होता है। अपना कुछ बस नहीं। गंभीरसिंह मुस्कराकर बोला पिताजी! अब न तो मैं कारागार में हूं, और न आप! ईश्वर ने आपकी

प्रार्थना स्वीकार कर ली है। मारवाड़ को अब आप शीघ्र ही पहली दशा में देखिएगा। और दुर्गादास ने अपने बाहुबल से सोजितगढ़ जीतकर, आज देसुरी पर छापा मारा और इनायत को उसके पापों का पूरा-पूरा फल दिया। अब आज इस किले पर भी राजपूती झंडा फहरा रहा है। केसरीसिंह के लिए इससे अधिक आनन्द की और बात कौन होती? आनन्द से फूल उठा, रोमांच हो आया; गंभीर को फिर छाती से लगा लिया और उतावला होकर वीर दुर्गादास से मिलने के लिए चल दिया।

इधर मानसिंह ने और सब राजपूत बन्दियों को बड़े मान और आदर के साथ कारागार से बाहर निकाला। जय ध्वनि आकाश में गूँजने लगी। चारों तरफ से सब राजपूतों ने दुर्गादास को घेर लिया। दुर्गादास बड़ी नम्रता के साथ हर-एक का यथोचित सम्मान करता हुआ प्रेम से गले मिला। सूर्य भगवान् भी आनन्द लूटने के लिए उदयांचल से चल पड़े। सवेरा होते ही देसुरी के किले पर राजपूतों का झंडा उड़ते देख, छोटे, बड़े सब राजपूत गाते-बजाते खुशी मनाते हुए वीर दुर्गादास के लिए आ पहुँचे। इस समय राजपूतों में निराला जोश था। कायर भी तलवार खींचकर मारवाड़ को स्वतन्त्र करने के लिए सौगंधा खाता था। आज देसुरी का ऐसा कोई भी राजपूत न होगा, जिससे दुर्गादास विनयपूर्वक न मिला हो। अब दिन लगभग एक पहर के ढल चुका था।, दुर्गादास सबसे मिल-भेंटकर अपनी ससुराल चला गया और यथायोग्य अपने आत्मीयों से मिला, भोजन किया, और शाम होने के पहले ही किले पर लौट आया।

देसुरी के सरदार सुरतानसिंह, केसरीसिंह इत्यादि एकान्त में बैठकर विचार करने लगे कि मुगल बादशाह का किस प्रकार सामना किया जाय और मारवाड़ में शान्ति किस प्रकार स्थापित की जाय। उसी समय एक धावन वीर दुर्गादास के नाम पत्र लेकर पहुँचा। दुर्गादास ने पत्र लेकर गंभीरसिंह को बाँचकर सुनाने के लिए दे दिया। गंभीरसिंह पढ़ने लगा

'दयालु दुर्गादास! आपके देसुरी चले जाने के बाद मुगलों ने घात पाकर वालीगढ़ पर धावा किया। यहां कोई बड़ी सेना तो थी ही नहीं और जो कुछ थी भी, वह सजग न थी। मामाजी अपने को मुगलों का सामना करने में असमर्थ समझ प्राण ले भागे। मुगलों ने गढ़ लूटी, और हम तीनों हतभागियों को पकड़कर जोधपुर लाये। यहां पर पिताजी पर राजद्रोह का अपराध लगाया, और प्राणदण्ड की आज्ञा हुई। अब यदि दो दिन के अन्दर, हम लोगों का इस विपत्ति से छुटकारा न हुआ, तो मारवाड़ का स्वतन्त्र होना न होना हमारे लिए समान है। इति।

आपकी कृपाभिलाषिणी,

लालवा।

पत्र सुनते ही वीर दुर्गादास के आग-सी लग गई। पास बैठे हुए सरदारों की भी त्योंरियां चढ़ीं और मानसिंह तथा गंभीरसिंह का कहना ही क्या! नवीन रक्त थोड़ी-सी भी आंच से उबल पड़ता है। तमतमा उठे। देसुरी के सरदार ने लगभग अठारह हजार राजपूत सेना इकट्ठी कर दी। तुरन्त ही वीर दुर्गादास ने एक हजार वालीगढ़ की रक्षा के लिए भेज दी। दो हजार सेना देसुरी में छोड़ी। पंद्रह हजार अपने साथ जोधपुर ले जाने के लिए तैयार कराई। हालांकि पंद्रह हजार तो क्या, पच्चीस हजार राजपूत सेना भी जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिए, मुगलों के सामने मुट्ठी भर ही थी। परन्तु यहां तो सत्य का पक्ष था।! पुरुषार्थ पुरुष करता है, तो सहायता ईश्वर करता है यही भरोसा और विश्वास था।।

रात एक पहर व्यतीत हो चुकी थी। गंभीरसिंह वीर दुर्गादास के पास आया और बोला महाराज, सेना तैयार है, कूच की आज्ञा दीजिए। इतने में कहीं दूर से डंके की आवाज सुनायी दी। दुर्गादास चौकन्ना-सा गद्दी के बाहर आया। अब तो डंके की चोट के साथ-साथ जय ध्वनि भी सुनायी पड़ने लगी महाराज राजसिंह की जय! अजीतसिंह की जय! मारवाड़ की जय! वीर दुर्गादास का मनमयूर घंटाटोप सिसौदी सैन्य देखकर नाचने लगा। समझ गया कि उदयपुर के महाराज ने मेरे पत्र के उत्तार में यह सेना भेजी है। अगवानी के लिए आगे बढ़ा। राणा राजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह वीर दुर्गादास को आते देखकर घोड़े से उतर पड़ा और प्रेम से गले मिला। कुशल प्रश्न के बाद दुर्गादास ने कहा – ‘ ठाकुर साहब! यदि थोड़ी देर आप और न आते, तो हमारा लश्कर जोधपुर के लिए कूच कर चुका था। जयसिंह ने कहा – ‘ क्यों? हमारा तो मन था। कि पहले अजमेर पर छापा मारा जाय; परन्तु आपने क्या सोचकर मुट्ठी-भर राजपूतों के साथ जोधपुर पर धावा करने का विचार किया? दुर्गादास ने कहा – ‘ भाई जयसिंह! मैं जोधपुर जाने के लिए विवश था। ठाकुर महासिंहजी अपने कुटुम्ब सहित शत्रुओं के हाथ पकड़े गये। इस समय वे जोधपुर में हैं, और ठाकुर साहब को फांसी की आज्ञा हो चुकी है। अब आप ही बताइये ऐसे समय में हम लोगों का क्या धर्म है? महासिंह का हाल सुनते ही जयसिंह जोश में आ गया, बोला भाई दुर्गादास! अब हम लोगों को यहां एक क्षण भी विश्राम करना उचित नहीं। हम अपने साथ दस हजार सवार और पच्चीस सवार पैदल सेना लाये हैं, इसका शीघ्र ही प्रबन्धा करो। वीर दुर्गादास ने सब पचास हजार पैदल एकत्र सेना के पांच भाग कर डाले। तीन हजार सवार और सात हजार पैदल सेना का नायक मानसिंह को बनाया। इसी प्रकार अन्य चारों भागों को क्रमशः जसकरण, केसरीसिंह, जयसिंह और करणसिंह को सौंपा। आप सारी सेना का निरीक्षक बना और अपनी रक्षा के लिए तेजकरण और गंभीरसिंह को दाहिने-बायें रखा।

कूच का डंका बजा, जय-घोष से आकूश गूंज उठा। राजपूत वीर रणचण्डी की पूजा करने के लिए जोधपुर की ओर चल दिया; वीर दुर्गादास के समान सब राजपूतों ने अपने देश स्वतन्त्रा करने की सौगन्धा ली थी। सब ही देश पर मर मिटने के लिए तैयार थे। सेना में कोई ऐसा राजपूत न था, जिसे स्वदेशाभिमान न हो। रात-भर चलने पर भी किसी को जोश के कारण थकावट न आई। भोजनों की किसी को इच्छा न थी, इच्छा थी कि घमासान युद्ध की। दुर्गादास ने सवेरा होते ही एक घने पहाड़ी प्रदेश में पड़ाव डाला। दो घड़ी दिन बाकी था। कूच का डंका बजा और सेना चल दी। रात्रि के पिछले पहर जोधपुर की चौहद्दी पर जा पहुंचा। वीर दुर्गादास के आज्ञानुसार जयसिंह ने गढ़ का पूर्व द्वार और करणसिंह ने पश्चिमी द्वार घेर लिया जिसमें न तो किले से कोई सेना बाहर आ सके और न बाहर से भीतर ही जा सके। बस्ती की चौकसी के लिए केसरीसिंह अपनी दस हजार सेना लेकर डट गये। ऐसे व्यूह-रचना से दुर्गादास का केवल यही अभिप्राय था। कि मुगलों को किसी तरफ से किसी प्रकार की सहायता न मिल सके। शेष दो भाग सेना बाहर से आने वाली मुगल सेना की रोक के लिये और थकी हुई राजपूत सेना की कुमुक के लिए थी। राजपूत भी जोश में भरे थे रात का पिछला पहर भी छापा मारने के लिए अच्छा था। कोई मुगल सरदार शौच के लिए गया था, तो कोई नमाज पढ़ रहा था। सारांश यह कि सब लोग गाफिल थे। जितना समय उनको सजग होने में लगा, उतना ही समय राजपूतों को किले का फाटक तोड़ने में लगा। दीवार टूटते ही राजपूत सेना भीतर घुसी और घमासान मार-काट होने लगी। किले पर मारू बाजा बजने लगा। रणचंडी थिरक-थिरककर भाव दिखाने लगी! 'अल्लाह हो अकबर' की तरफ और 'हर-हर महादेव' की दूसरी तरफ से आवाजें गूंजने लगी। जोशीले वीर राजपूतों की दुतरफा मार ने मुगलों के पैर उखाड़ दिये।

मुगल सरदार दिलावर खां ऊंचे स्वर से मुगल सिपाहियों को जोश दिलाने के लिए कहने लगा 'नमकहरामी गुनाह है। गुलाम बनकर रहने से मौत बेहतर है। अहले इस्लाम! उन्हें कसम कुरान मजीद की है, जो जीते जी मैदान से

भागे।' मुगलों में एक क्षण के लिए फिर जोश पैदा हो गया। लौटकर भूखे बाज की तरह राजपूत सेना पर टूट पड़े। वह समय पास ही था। कि राजपूत त्रहि-त्रहि करके भागे; परन्तु बनाई हुई सेना लेकर तुरन्त ही वीर दुर्गादास आ पहुंचा। दोनों ओर चम-चम बिजली-सी तलवारें चमक रही थी। बाण चल रहे थे। जीत के मारे राजपूत 'हर-हर महादेव' करते हुए आगे बढ़ रहे थे। इतने में किसी अन्यायी मुगल ने वीर दुर्गादास पर पीछे से तलवार का वार किया। ईश्वर की कृपा थी कि गंभीरसिंह ने देख लिया, नहीं तो वीर दुर्गादास की जीवन-लीला यहीं समाप्त हो जाती। गंभीर ने उस दगाबाज को इतने जोर से धाक्का मारा कि वह अपने को किसी प्रकार संभाल न सका और धाड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। गंभीर तुरन्त उसकी छाती पर बैठा। अपनी जान संकट में देख उसने दुर्गादास की दुहाई दी। वाह रे दया वीर! ऐसी नीचता का काम करनेवाले मुगल को भी तुरन्त प्राण-भिक्षा दे दी। जब मुगल सेना ने गंभीर को उस मुगल सरदार की छाती पर चढ़ते देखा तो 'इनायत खान मारा गया' का शोर मच गया। मुगल सिपाही अपने ही घायलों को रौंदते हुए भागने लगी। वीर दुर्गादास चकराया हुआ खड़ा था। यह इनायत कौन? इनको मैंने तो देसुरीगढ़ के द्वार पर मारा था। तब भेद खुला कि इनायत खान एक सिपाही को जिसकी सूरत उसकी सूरत से मिलती थी, अपने कपड़े पहनाकर देसुरी से भाग गया था। यही नकली इनायत खान वहां मारा गया था।।

सहसा ऊपर से दिलावर खान ने ऊंचे स्वर से पुकारकर कहा – 'दुर्गादास! अगर महासिंह की जान बचाना चाहते हो, तो अभी अपनी सेना किले से बाहर ले जाओ।' दुर्गादास ने ऊपर देखा तो दुष्ट दिलावर खान ने महासिंह के गले में फांसी की रस्सी डाल रखी थी। वीर दुर्गादास की आंखों में आंसू भर आये और तुरन्त ही राजपूत सेना को किले से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी। महासिंह ऊपर से दुर्गादास को ललकार कर रहा वीर दुर्गादास! क्यों भूल रहे हो, क्या हमारे प्राण दूसरे राजपूतों के प्राणों से अधिक मूल्यवान हैं? क्या हमारे प्राण दूसरे राजपूतों के प्राणों से अधिक मूल्यवान हैं? क्या हमको अमर समझ रखा है? थोड़ी देर के लिए सब ही संसार में आये हैं, एक दिन मरना अवश्य है, इसलिये अपनी विजय को पराजय में न बदलो। महासिंह दुर्गादास को उत्तोजित कर रहा था। और दिलावर गले में पड़ी रस्सी में झटका देने को तैयार खड़ा था। गंभीरसिंह अपने क्रोध को अधिक समय तक दाब न सका; परन्तु इनायत खान को सामने खींच लाया और बोला अच्छा दिलावर खान! यही करना चाहते हो तो करो। हम भी जितने मुगल सरदार हमारे बन्दी हैं, सबको महासिंह के बदले में तुम्हारी ही आंखों के सामने ऐसी बुरी तरह मारेंगे कि पत्थर की आंखें भी रो देंगी। अब तो दिलावर खान के हाथ-पांव फूल गये। गंभीरसिंह को उत्तार न दे सका। वह जानता था। इनायत खान का राज-दरबार में कितना मान है। यदि इनायत खान महासिंह के बदले में मारा गया, तो मेरी भी कुशल नहीं। तुरन्त महासिंह के गले से रस्सी निकाल फेंकी और बोला वीर दुर्गादास, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि महासिंह को अब किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाया जायेगा और यदि सांयकाल तक बादशाह का कोई आज्ञा पत्र न आया, तो किला आपके अधीन करके सन्धि कर लूंगा। व्यर्थ के लिये मैं बहुमूल्य रत्नों को मिट्टी में नहीं मिलाना चाहता।

वीर दुर्गादास ने दिलावर खान की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजपूत सेना अपनी थकवाट मिटाने के लिए समीप ही के एक पहाड़ी प्रदेश में चली गई, और शोनिंगजी इत्यादि बुद्ध सरदारों ने घायल राजपूत वीरों को मरहम-पट्टी के लिए राजमहल में भेजा। यहां सब सामग्री इकट्ठी थी और किसी बात की कमी न थी; क्योंकि सरदार केसरीसिंह ने किले पर धावा होने के पहले ही राज भवन पर अपना कब्जा कर लिया था। बस्ती में किसी मुगल का पुतला भी न रह गया। विशिष्ट मुगल सरदारों को केसरीसिंह ने बन्दी बनाकर राज-भवन में कैद कर दिया। बेचारा इनायत खान भी वहीं पहुंच गया। इन सब आवश्यक कामों से छुट्टी पाकर शोनिंग जी वीर दुर्गादास से मिले। सब सरदार एकत्र होकर दिलावर खान की कही हुई बातों पर विचार करने लगे। दुर्गादास ने कहा – 'भाइयो! इस कपटी को दिल्ली से

किसी प्रकार की सहायता मिलने की पूर्ण आशा है, इसी कारण इसने सायंकाल तक युद्ध बन्द रखने की प्रार्थना की है, इसलिए मेरा विचार है कि मुगल सेना आने का सब मार्ग पहले ही से रोक दिये जायें और किले में पहुंचने के पहले ही यहीं निपट लिया जाय। मैदान की लड़ाई में सब प्रकार की सुविधा है। वीर दुर्गादास की सलाह सबने पसन्द की और मार्ग के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी राजपूत-सेना पहाड़ी खोहों में छिपा दी गई।

दिन लगभग दो पहर बाकी थी। एक भेदिये ने मुगल सेना के आने के समाचार कहे। दुर्गादास ने प्रसन्न होकर राजपूत वीरों को सजग कर दिया। थोड़ी ही देर में सामने बादशाही झंडा फहराते हुए मुगल सरदार मुहम्मद खां के साथ एक भारी मुसलमानी दल आता दिखाई पड़ा। ज्योंही यह सेना पहाड़ी दर्रे से आई, दुर्गादास ने डंके पर चोट मारी, इधर वीर राजपूत जय-घोष करते हुए अपने शत्रुओं पर टूट पड़े। उधर साहसी वीर गंभीरसिंह और तेजकरण दोनों ने झपटकर बादशाही झंडा नीचे गिराया। एक ने मुहम्मद खां को पकड़ा और दूसरे ने राजपूती झण्डा खड़ा किया।

सरदार पकड़ा गया, तो बादशाही सेना निराश होकर भागने लगी; परन्तु राजपूत वीरों ने वीर दुर्गादास के आज्ञानुसार मुगल सेना को पीछे भागने से रोका; क्योंकि भेदिये ने सत्तर हजार सेना के तीन भागों में आने के समाचार दिये थे। यदि पराजित मुगल सेना पीछे जाती, तो सम्भव था। कि दूसरी आने वाली मुगल सेना सजग रहती, फिर तो वीर दुर्गादास को थोड़े से राजपूत वीरों को लेकर इतनी बड़ी मुगल सेना पर विजय पाना कठिन हो जाता। और हुआ भी ऐसा ही। जब तक पराजित मुगल सेना के हथियार छुड़ाये जायें, और आगे वाले दर्रे तक राजपूत सेना भेजी जाय, कि दूसरा मुसलमानी दल आ गया। इसका सरदार तहब्बर खां बड़ा बहादुर था। अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ बड़ी वीरता से लड़ने लगा। उस समय का दृश्य भयानक था। वीर दुर्गादास रक्त से नहाया हुआ था। जसकरण, तेजकरण तथा। गंभीरसिंह का भी ऐसा कोई अंग न था।, जहां गहरा घाव न लगा हो। एक ओर तहब्बर खां, दूसरी ओर वीर दुर्गादास अपने वीरों को उत्तोजित कर रहे थे। एक कुरान मजीद की सौगन्धा देता था।, तो दूसरा बहन-बेटियों की लाज के लिए मर मिटने को कहता था। सारांश यह कि दोनों दल बड़ी वीरता के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे। दुर्गादास को घिरा देख, मानसिंह आगे बढ़ा और तहब्बर खां पर अपनी पूरी शक्ति से भाले का प्रहार किया। बेचारा घायल होकर जमीन पर गिरा। साथ ही जसकरण ने दिलावर खां का सर काट लिया। बादशाही झंडा नीचा हुआ। मुगल सेना परास्त हुई और भाग निकली। राजपूतों की जय-ध्वनि चारों ओर गूंजने लगी। राजपूत इतने प्रसन्नचित्ता थे, जैसे कभी किसी को कुछ परिश्रम ही न करना पड़ा हो। आश्चर्य तो यह था। कि मरण-प्राय घायल भी, उठकर जय-जय वीर दुर्गादास की जय! कहकर नाचने लगे।

वीर दुर्गादास ने तहब्बर खां से पूछा खां साहब! आपके बादशाह सलामत ने इतनी ही सेना भेजी थी, या और भी? तहब्बर खां ने कहा – ‘महाराज! अभी सरदार अकबर शाह के साथ लगभग बीस हजार मुगल सेना और आती होगी। वीर दुर्गादास ने उस समय दोनों बादशाही झंडे, और तीनों सरदार इनायत खां, मुहम्मद खां और तहब्बर खां को थोड़ी सेना के साथ आगे भेजा। जब अकबर शाह की सेना समीप आई, मानसिंह ने अकबर शाह से मिलकर वीर दुर्गादास का सन्देश कहा – ‘ और दोनों बादशाही झण्डे दिखाये। अकबर शाह बड़ा ही शान्त था। दोनों बादशाही झण्डों और सरदारों को राजपूतों को बन्दी देख अपना झण्डा भी मानसिंह को सौंप दिया और सन्धि का झण्डा ऊंचा करके वीर दुर्गादास की शरण आया। तब अपनी तलवार दुर्गादास के सामने रख दी। वीर दुर्गादास ने फिर तलवार उठाकर प्रेम से अकबर शाह को दे दी। विजय के बाजे बजने लगे।

दुर्गादास ने दिलवार खां के प्रतिज्ञानुसार किले को अपने अधीन करने और महाराज महासिंह को छुड़ाने के लिए, मानसिंह और गंभीरसिंह को भेजा। इन दोनों को आते देख किले के रक्षकों ने आगे बढ़कर कुदबिजयां सौंप दी, परन्तु इन दोनों में कोई भी इस किले में पहले कभी न आया था।, इसलिए एक रक्षक की सहायता से महासिंह के पास पहुंचे। जिस प्रकार किसी डूबने वाले को आधार मिल जाय, और वह दौड़कर उसे पकड़ ले, वैसे ही महाराज ने अपने भतीजे और भानजे को हाथों से पकड़कर छाती से लगा लिया। प्रेम के आंसू आंखों में आ गये। गला भर आया। बड़ी कठिनता से बोले बेटा! हमारा प्राण-रक्षक वीर दुर्गादास कुशल से तो है? गंभीरसिंह अपने सरदारों की कुशल के साथ-साथ देसुरी और जोधपुर की विजय-कहा – ‘नी कहने लगे। मानसिंह अपनी बहन लालवा के कमरे में पहुंचा। देखा एक दीपक जल रहा है, और सामने लालवा घुटना टेके पृथ्वी पर बैठी हुई जगत्पिता परमेश्वर से प्रार्थना कर रही है! वह इतनी निमग्न थी कि मानसिंह को अपने कमरे में आते न जाना। मानसिंह थोड़ी देर तक खड़ा रहा, परन्तु लालवा का ध्यान न टूटा। अन्त में मानसिंह ने पुकारा बहन! आज ईश्वर की कृपा से विजयी वीर दुर्गादास ने मुगलों को पराजित कर जोधपुर की राजश्री अपना ली! आज से अपना प्यारा देश स्वतन्त्र हुआ! इसको लालवा ने आकाशवाणी समझा; परन्तु जब यह सुना कि मुझको वीर दुर्गादास ने बन्धान मोक्ष के लिए भेजा है, तब आंखें खोल दी और प्यारे भाई मानसिंह को सामने खड़ा देखा। उन्मत्ताओं के समान उठ पड़ी, और बोली प्यारे भाई, हमारी लाज बचाने वाला कुशल तो है? संग्राम में कोई गहरा घाव तो नहीं लगा? हमारे प्यारे पिताजी तथा। माता तेजबा तो प्रसन्न हैं? लालवा का यह अन्तिम प्रश्न पूरा भी न हुआ था। कि तेजबा को साथ लिए हुए महाराज महासिंह आ पहुंचे। लालवा को प्यार से छाती लगाकर कारागार के बीते दुखों को भूल गये। महासिंह, गंभीरसिंह के साथ वीर दुर्गादास से मिलने चले; और मानसिंह तेजबा और लालवा को लेकर राज-भवन चला गया।

6

मानसिंह और गंभीरसिंह को किले पर भेजने के पश्चात्, वीर दुर्गादास ने चारों मुगल सरदारों को केसरीसिंह के साथ किया और राजमहल के पास वाले कारागार में कैद कर दिया। जोधपुर की रक्षा के लिए भी उचित प्रबन्धा किया। चारों तरफ विश्वासी रक्षकों तथा। गुप्तचरों को नियुक्त किया। सब जरूरी कामों से निपटने के बाद एक छोटी-सी सभा की। राजपूत सरदारों की अनुमति पाकर आस-पास के गांवों में रहने वाले मुगलों को युद्धनीति के अनुसार पकड़कर कैद कर लिया; पर उनके साथ शत्रु का-सा नहीं, मित्र का-सा व्यवहार किया जाता था!! वीर दुर्गादास की मन्शा मुगलों को कष्ट पहुंचाने की न थी। केवल शत्रुओं पर राजपूत कैदियों को छोड़ देने के लिए दबाव डालना था।।

दुर्गादास सदैव अपने देश और जाति की भलाई के लिए कमर कसे तैयार ही रहता था। कोई काम कैसा भी कष्ट साध्य क्यों न हो, कभी न हिचकता था। आज उसी साहस और देशभक्ति की बदौलत उसने अमर-कीर्ति प्राप्त की है। मारवाड़ के बच्चे भी वीर दुर्गादास के नाम पर गर्व करते हैं।

जब जोधपुर की जीत का समाचार फैला, तो शत्रु भी मित्र बनकर बधाई देने के लिए इकट्ठा होने लगे और इतनी भीड़ हुई कि जोधपुर में एकत्र जनता समा न सकी; विवश होकर वीर दुर्गादास को जोधपुर के बाहर एक भारी मैदान में सभा करनी पड़ी। पौष की पूर्णिमा के दिन राजप्रसाद से लेकर सभा-मण्डप तक एक तिल रखने की भी जगह न थी। कभी कोई राज-भवन से सभा की ओर जाता था, तो कोई सभा से राज भवन की ओर लौट आता था। उस समय चलती-फिरती जनता का दृश्य बड़ा ही अपूर्व था। मालूम होता था। कि समुद्र उमड़ पड़ा है। ऐसा कोई न

था। जिसको वीर दुर्गादास के दर्शनों की लालसा न हो। स्त्रियां झरोखों से झांक रही थी। जयध्वनि आकाश में गूंज रही थी। और चारों ओर से फूलों की वर्षा हो रही थी। अच्छा हुआ कि वीर दुर्गादास राज-भवन से पैदल ही चला नहीं तो फूलों से दब जाता और बेचारे दर्शकों की लालसा धूल में मिल जाती; क्योंकि इसमें अधिकांश ऐसे भी थे जो दुर्गादास को पहचानते न थे। वे अपने पास खड़े हुए मनुष्यों से पूछते थे भाई! इनमें वीर दुर्गादास कौन हैं? कोई अपने मित्र की उंगली उठाकर बता रहा था। कोई एक दूसरे से कह रहा था। भाई, मारवाड़ का विजेता, हमारी बहन-बेटियों की लाज की रक्षा करने वाला वीर दुर्गादास इस प्रकार सबको नमस्कार करता हुआ पैदल ही जा रहा है। धान्य है! देखो! इतना बड़ा काम करने पर भी घमण्ड का नाम नहीं, देवता है। मनुष्य नहीं, देवता है। मनुष्य में यह गुण कहां?

जनता धीरे-धीरे दुर्गादास के साथ सभा मण्डल में पहुंची यहां मारवाड़ देश की सभी छोटी-बड़ी रियासतों के सरदार बैठे हुए वीर दुर्गादास के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही उठ खड़े हुए और बड़े आदर भाव से वीर दुर्गादास को एक ऊंचे आसन पर ला बिठाया विविधा प्रकार के सुगन्धित फूलों के गजरे उनके गले में डाले, केसरिया चन्दन का लेप किया। उदयपुर के राणा राजसिंह के पुत्र भीमसिंह ने राजसी पोशाक भेंट की, जो राजा साहब ने दुर्गादास के लिए भेजी थी। दुर्गादास ने राणा साहब का उपहार बड़े सम्मान के साथ लिया, उसे माथे पर चढ़ाकर गद्दी पर रख दिया और जनता के सामने हाथ जोड़कर कहने लगा राजगुरु और प्यारे भाइयो! आज आप लोगों ने हमारा जो कुछ सम्मान किया है, मैं उसके लिए आपका आजीवन आभारी रहूंगा। यद्यपि जो काम मैंने किया है, वह हर एक देशाभिमानी कर सकता था। और मुगलों के अत्याचार से विवश होकर करता भी; परन्तु ईश्वर यह कीर्ति मुझको देना चाहता था।; इसलिए प्रसंग भी वैसा ही आ बना। हमारे पूज्य, वृद्ध सरदार महासिंहजी को मुगलों ने कंटालिया में घेर कर मारना चाहा था।, इनकी रक्षा करने में मेरे हाथों सरदार जोरावर खां का खून हुआ! मुगलों ने उसी खून के बदले में मेरी वृद्ध मां जी की हत्या की, घर-बार लूटा और कल्याणगढ़ फूंक दिया। यद्यपि मैं मुगलों से इसका बदला लेने में असमर्थ था।; परन्तु परमात्मा की कृपा और अपने देश-भाइयो की सहायता से आज इस योग्य हुआ कि जोधपुर में मुगलों को परास्त कर एक महती सभा कर सका। प्यारे भाइयो! इतनी आजादी होते हुए भी, मुझे एक बार और भीषण युद्ध होने की शंका है। क्या मुगल बादशाह आलमगीर अपना अपमान सह सकता है? नहीं, कदापि नहीं। वह एक बार दुनिया के कोने-कोने से अपनी सेना बटोर कर मारवाड़ पर धावा अवश्य करेगा, इसलिए मैं अपने देशवासियों से एक बार और सहायता करने की प्रार्थना करता हूं। यदि आप लोग अपने पूज्य गुरु ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत की, अपने मन्दिरों की मूर्तियों की रक्षा चाहते हों, तो हमारा साथ दो, मारो और मर मिटो, 'आजादी या मौत' का प्रण करो। बीज जब तक मिट्टी में नहीं मिलता कभी हरा-भरा होकर फल नहीं लाता। भाइयो! मुझे पहले बड़ी संख्या में सहायता क्यों नहीं मिली! इसका कारण था।, यह था। कि हमारे राजपूत भाई यह समझते थे, कि राजवंश का तो नाश हो गया अब महाराज जसवन्तसिंह की गद्दी का उत्तराधिकारी कोई रहा नहीं, हम किसके लिए इतने बड़े मुगल बादशाह से बैर करें और अपना सत्यानाश करायें। वे समझते थे दुर्गादास ने मुगलों से जो बैर ठाना है, वह राज्य के लालच से। भाइयो! मैं सर्वान्तर्यामी ईश्वर को साक्षी करके कहता हूं कि न मुझमें राज्य का लोभ था।, न है और न कभी होगा। मेरे बहुत से भाइयों को अभी यह नहीं मालूम कि महाराज जसवन्तसिंह का चिरंजीवी पुत्र अजीतसिंह अभी जीवित है उसका पालन-पोषण गुप्त रीति से हो रहा है। समय आने पर आप लोग राजकुमार का दर्शन करेंगे।

वीर दुर्गादास इतना कहकर बैठ गया। जय-ध्वनि और फूलों की वर्षा हुई। इसके पश्चात महाराज महासिंह जी उठे और जनता को नमस्कार कर बोले भाइयो! वीर दुर्गादास ने मुगलों से बैर बसाने का जो कारण बताया, वह

अक्षरशः सत्य है। दुर्गादास ने मारवाड़ देश अपने लिए नहीं जीता, परन्तु अपने पिता तुल्य राजा जसवन्तसिंह जी का आज्ञा पालन किया। महाराज अपने सरदारों को अपने मरने के दस दिन पहले आज्ञा दे गये थे, कि यदि हाड़ी वा भाटी रानी से ईश्वर की इच्छा से हमारी गद्दी का वारिस जन्मे, तो सब सरदार कार् कत्ताव्य होगा कि मारवाड़ देश को मुगलों से छुड़ाकर राजकुमार को गद्दी पर बिठावें। आज वीर दुर्गादास ने अपने कत्ताव्य का पालन कर दिखाया। अब हम लोगों के लिए उचित है कि जी तोड़कर वीर दुर्गादास की सहायता करें जिसमें वह समय शीघ्र ही आ जाय, कि सब राजपूत अपने राजकुमार को जोधपुर की गद्दी पर बैठे देखें!

जनता एक ही आवाज में बोल उठी हम लोग अपने राजकुमार के लिए तथा। मारवाड़ देश के लिए मर मिटने को तैयार हैं।

महासिंह जी जनता का जोश देखकर अपने राजगुरु जयदेव की ओर देखा। गुरुजी ने वीरों को माघ सुदी पंचमी के दिन युद्ध पर जाने की अनुमति दी। सब सरदारों ने अपनी-अपनी सेना सहित मुहूर्त के एक दिन पहले ही आने की प्रतीक्षा की। सभा विसर्जित हुई। एकत्र जनता तथा। राजपूत सरदारों ने एक दूसरे से विदा ली और वीर दुर्गादास की बड़ाई करते हुए अपने-अपने घर गये।

बेचारे दुर्गादास का घर तो कहीं रहा ही न था।, इसलिए महासिंह आदि सरदारों को साथ लेकर राजभवन में लौट आया, और घायल राजपूतों तथा। मुगल बन्दियों की देख-रेख में अपने दिन बिताने लगा। वह अपने अधीन कैदियों को कभी दुःख न देता; वरन् मित्र समान व्यवहार करता था। मुहम्मद खां को तो बहुत मानता था। शत्रु हो अथवा मित्र, किसी की नेकी कभी भूलता न था। क्षमा करने में तो एक ही था। इनायत खां ने दुर्गादास के लिये क्या न उठा रखा था।; परन्तु उसे भी क्षमादान दिया। कभी उन सबको बुलाता और कभी आप ही उनके पास जाता। रात-रात भर उनसे बातें करता रहता। उसके हृदय में मालिन्य का लेश भी न था।।

धीरे-धीरे एक महीना बीता, और चारों ओर से बादलों के समान राजपूत सेनाएं उमड़-धुमड़कर चलने लगीं। जोधपुर में राजपूत वीरों का एक अच्छा जमाव हो गया। बीकानेर और जैसलमेर के सरदारों ने आकर उदयपुर में पड़ाव डाला और जयसिंह के साथ देसुरी आ पहुंचे। माघ सुदी पंचमी के दिन वीर दुर्गादास जोधपुर की एकत्र सेना लेकर ठाकुर जयसिंह से देसुरी में आ मिला। वह चारों मुगल सरदारों को उनकी मुसलमानी सेना सहित अपने साथ लाया था।, क्योंकि बादशाह से बन्दियों की अदला-बदली करनी थी। ये लोग राजपूतों से कुछ ऐसे मिल-जुल गये थे कि कोई देखने वाला इन्हें कदापि कैदी नहीं कह सकता था। परस्पर भाई-चारे का-सा व्यवहार था। एक दूसरे से बड़े प्रेम से मिलता था।, और विश्वास करता था। यह था। संगति का फल, और वीर दुर्गादास का बर्ताव, कि शत्रु भी मित्र बन गये। और समय-समय पर हितकर सलाह भी देने लगे, जिसे दुर्गादास सहर्ष मानता था। आज ही जब देसुरी से सेना के आगे चलने के विषय में सलाह हो रही थी तो मुहम्मद खां ने इसका विरोधा किया। और बात ठीक थी; क्योंकि झुपपुटा हो चुका था। आगे यदि पड़ाव के लिए उचित समय न मिलता, तो बड़ी असुविधा होती। सेना के लिए भोजन और विश्राम जरूरी है। यह सोचकर पड़ाव देसुरी के ही मैदान में रहा। रात हुई। सबने भोजन किया और विश्राम करने लगे। दुर्गादास जरूरी कामों से निपटकर अकबर शाह के डेरे में गया और बैठकर बातचीत करने लगा। बातों में औरंगजेब का प्रसंग छिड़ गया। दुर्गादास ने कहा – ‘ भाई! आप मानें, या न मानें क्योंकि वह आपके पिता हैं, परन्तु मैं तो यही कहूंगा कि औरंगजेब किसी पर विश्वास नहीं करते! देखो उन्होंने राजा जसवन्तसिंह के साथ कैसा कपट व्यवहार किया! उन्हीं के इशारे से काबुल में बलवा हुआ, जिसमें जहरीले कपड़े

पहनाकर जान ली। तब धोखे से मारवाड़ को अपने अधीन कर लिया। फिर भी सन्तोष न हुआ। यहां तक कि महाराज का वंश ही नष्ट करने पर उतारू हो गये! दिल्ली में ही, अजीतसिंह के मरवाने के लिए क्या नहीं किया? देखो भाई अकबरशाह! भला कोई अपने मित्र के साथ ऐसा विश्वासघात करता है? अच्छा, मान लो, हम लोग परधार्मी थे; हमारे साथ जो कुछ किया, अच्छा किया; परन्तु क्या तुम्हारे बाबा शाहजहां भी काफिर थे? जिन्हें कारागार में पानी का भी कष्ट दिया। अपने सगे भाइयों तथा। भतीजों से जैसा बर्ताव किया, क्या वह आपसे छिपा है? खैर यह भी सही, वह दूर के थे; परन्तु आप तो उनके बेटे हैं, वे आप ही पर विश्वास नहीं करते। अगर विश्वास करते तो तैवर खां को आपकी देख-रेख के लिए तैनात न करते! अगर आपको यकीन न आये तो तैवर खां के पूछ देखें।

अकबरशाह को विश्वास न आया; परन्तु यह बात उसके मन में खटकती रही। आखिर तैवर खां को बुलाने के लिए तुरन्त ही एक चौकीदार भेजा। थोड़ी देर में तैवर खां और जयसिंह शाहजादे के डेरे में आ पहुंचे। वीर दुर्गादास ने बड़े सम्मान से दोनों को आसन दिया। जब दोनों बैठ गये, तो अकबर शाह ने पूछा भाई तैवर खां, मुझे विश्वास है कि तुम कभी झूठ नहीं बोलते; तथा।पि आज ठाकुर जयसिंह और दुर्गादास के सामने तुम्हें कुरान की सौगन्धा देता हूं, कि जो कुछ भी पूछा जाय, उसका उत्तर सत्य ही हो। तैवर खां ने कहा – ‘पूछिए, आप लोग क्या पूछना चाहते हैं?’ शाहजादे ने पूछा बादशाह सलामत ने मेरे बारे में कुछ कहा – ‘था।?’

तैवर खां उत्तर देने के पहले कुछ हिचकिचाया, फिर जी कड़ा करके बोला हां, कहा – ‘तो कुछ न था।; परन्तु मैं आपके सामने कहते डरता हूं।

दुर्गादास ने कहा – ‘भाई, डर किस बात का? जब कुरान की सौगन्धा दी गई, तो ऐसा कौन मूर्ख है, जो तुम्हारे सच बोलने पर क्रोध करे? जो कुछ कहना हो, निडर होकर कहो।

तैवर खां ने कहा – ‘जब दिल्ली से हम अपना लश्कर लेकर चलने लगे तब बादशाह ने हमें एकान्त में बुलाया और कहा – ‘देखो तैवर खां! हम दुनिया में तुमसे ज्यादा किसी को प्यार नहीं करते। हम जानते हैं कि तुम मुहम्मद खां की तरह कभी धोखा न दोगे, क्यों? तुमको बादशाही का लालच नहीं। जिसको किसी चीज का लोभ होता है, वही दगा करते हैं। हमको अगर कुछ सन्देह है, तो अकबर शाह पर क्योंकि उसको राज्य का लालच है। सम्भव है कि वह कपटी दुर्गादास की बातों में आ जाय और हमारे साथ वही बर्ताव करे, जो हमने अपने बाप के साथ किया था।, इसलिए तुम्हें होशियार किये देता हूं, कि उसकी नीयत अगर बुरी देखना तो उसी समय तलवार के घाट उतार देना। मैं तुमको सब तरह के अधिकार देता हूं।

इतना कहकर तैवर खां चुप हो गया।

अकबर शाह चिन्तित होकर बोला भाई दुर्गादास! आपका कहना सत्य है। अब्बाजान कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, उनकी मसलहत समझ में नहीं आती।

जयसिंह ने कहा – ‘अब आप ही कहिए। ऐसे राजा का कौन साथ देना चाहेगा? इससे यह न समझना कि मुसलमान होने के कारण हम लोग शत्रु बन गये। हमने नीति पर चलने वाले बादशाहों के लिए अपने भाइयों के गले पर तलवार चलाई है। आप ही के नामराशि, आपके पूर्वज अकबर तथा। शाहजहां को ठाकुरों ने कब सहायता नहीं दी? वे लोग प्रजा-पालक थे। अपनी प्रजा को पुत्र के समान मानते थे। हिन्दू हो या मुसलमान हो, सबको

योग्यता के अनुसार ओहदे देते थे। कभी किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते थे। हम लोग ऐसे बादशाहों के साथी हैं। तुम्हारे पिता-जैसे बादशाह के साथी नहीं, जो मन्दिर तोड़कर मसजिद बनाये, हमारी मूर्तियों को मसजिद की सीढ़ियों में लगाये, तीर्थ यात्रियों के कर ले और निर्दोष हिन्दुओं पर काफिर कहकर बिना अपराधा के ही अत्याचार करे। आप ही कहिए, यह जुल्म नहीं तो क्या है?

दुर्गादास अगर आप लोग औरंगजेब की करतूतों को दरअसल पाप और जुल्म समझते हो, और उनसे बचना चाहते हों तो जैसे हम कहें, वैसा करने की प्रतीक्षा करें, परन्तु समय पड़ने पर धोखा न देना। हम औरंगजेब को पकड़कर शाहजादे को गद्दी पर बिठा देंगे। इनका जैसा नाम है, वैसा ही बादशाह अकबर के-से गुण भी हैं। यदि ऐसा करना चाहते हों, तो सरदार मुहम्मद खां को बुला लो, मैं उपाय बताता हूँ।

जब तक चौकीदार मुहम्मद खां को बुलाकर लाये, इतनी देर में मन-ही-मन शाहजादा न जाने क्या-क्या सोच गया। मुहम्मद खां के आ जाने के बाद शाहजादे ने कहा – ‘ भाई दुर्गादास! आप जो कुछ करना चाहते हैं, इसमें कोई सन्देह तो नहीं कि इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं जिसमें हम दोनों की भलाई हो, परन्तु भाई! राज के लिए मैं ऐसा पाप नहीं कर सकता।

मुहम्मद खां ने कहा – ‘ शाहजादा! अभी आप बालक हैं, राजनीति नहीं जानते। बहुत पापों से बचने के लिए यदि एक पाप किया जाय, तो वह पाप नहीं, पुण्य है। इतना तो आप ही समझ सकते हैं, कि आपके गद्दी पर बैठने के बाद ये जुल्म, जो अभी हो रहे हैं, क्या बन्द न हो जायेंगे? फिर राजपूतों की जो शिकायत है, वह दूर हो जायगी। परस्पर मेल हो जाने पर प्रजा कितने सुख से रहे; इसलिए हमें तो ऐसा करने में कोई पाप नहीं मालूम होता। अब रहा यह कि औरंगजेब ने अपने बाप को कारागार में रखकर बड़ा कष्ट दिया था, आप ऐसा न करना। चलो, बस हो चुका। अगर आप इतने पर भी राजी नहीं, तो राजकुल में वृथा। ही जन्म लिया था, कहीं फकीर होते जाके।

तैवर खां ने कहा – ‘ इसमें आपको करना ही क्या है? हम कैदियों की अदला-बदली के बहाने अपनी मुगल-सेना लेकर जायेंगे, और पीछे से राजपूत सेना एकाएकी घावा कर देगी! बादशाह अपनी सेना समझकर हमारी ओर अवश्य भागेगा, बस हमारा काम बन जायगा। बादशाह को पकड़कर वीर दुर्गादास को सौंप देंगे, और आपको शाही तख्त पर बिठा देंगे।

अकबरशाह की नीयत बिगड़ी! संसार में ऐसा कौन है, जो लक्ष्मी का तिरस्कार करे? अब रात भी आधी बीत चुकी थी और सब सरदार भी दुर्गादास की राय पर सहमत थे। बातचीत बन्द हुई, सब लोग अपने-अपने डेरे में विश्राम करने चले गये। शाहजादा अपनी सेज पर पड़ा-पड़ा अपने भविष्य पर विचार करता रहा। सवेरा हुआ और कूच का डंका बजा। सरदारों ने अपनी-अपनी सेनाएं संभाली और बुधावाड़ी के मैदान की तरफ रवाना हुए। यहां से अजमेर केवल डेढ़-दो कोस रह जाता है। लड़ाई के लिए मैदान भी अच्छा था, और सेना के लिए भी सब प्रकार की सुविधा थी। दुर्गादास ने पड़ाव के लिए यही जगह उचित समझी। इनके दोनों तरफ पहाड़ी प्रदेश था। यहां युद्ध को किसी प्रकार की होने से प्रजा हानि नहीं पहुंच सकती थी। और वीर दुर्गादास का मतलब भी यही था, नहीं तो आगे ही से बस्ती के बाहर मोर्चाबन्दी क्यों करता? अस्तु, वीर दुर्गादास के आजानुसार पड़ाव यहीं पड़ा। सरदारों ने सेना के भोजन तथा विश्राम का पूरा प्रबन्ध किया।

शाम को जयसिंह तथा। दुर्गादास आदि मुगल सरदारों से मिलकर औरंगजेब के लिए जो षडयंत्र रचा गया था।, उस पर विचार करने लगे। दुर्गादास ने कहा – ‘ खां साहब, देखो, धोखा न देना! नहीं तो बेचारे अकबरशाह के अरमान खाक में मिल जायेंगे। अगर धोखा दिया भी, तो हमारा क्या जायेगा? हम तो लड़ाई के लिए घर से निकले ही हैं, जहां एक से निपटना है, वहां दो से सही!

मुहम्मद खां ने कहा – ‘ वाह! हम मुसलमान हैं, बात कहकर बदलते नहीं। आगे बढ़कर पीछे नहीं हटते। फिर यह तो अपने मतलब की बात है। इसी तरह अपनी-अपनी उड़ा रहे थे। अकबरशाह तो इतने प्रसन्न थे, मानो बादशाह ही बने बैठे हैं।

परन्तु यह अभी किसी को नहीं मालूम कि बना बनाया खेल बिगड़ गया। मनुष्य लाख सिर मारे; जो ईश्वर चाहता है, वही होता है। उसके सभी काम विलक्षण हैं, कौन जान सकता है कि कब क्या होगा। चाहे जितनी गुप्त रीति से बातचीत क्यों न की जाय, भेद खुल ही जाता है। बड़े-बड़े लोगों ने कहा – ‘ है कि कान दीवार के भी होते हैं। जब देसुरी में शाहजादे के खेमे में इस पर बातचीत हो रही थी उस समय एक मुगल सिपाही शमशेर बाहर पहरे पर था। वह बात सुन रहा था। यह था। मौलवी; कट्टर मुसलमान। अकबर और शाहजहां को भी काफिर ही कहता था। वह रोजा और नमाज से बढ़कर सबाब हिन्दुओं को दुख देने ही में समझता था। उसने सोचा कि काफिरों ने एक कट्टर मुसलमान बादशाह के विरुद्ध षडयंत्र रचा है, और वह मुझे मालूम हो गया है। अगर मैंने कोई उपाय न किया तो मैं भी खुदावन्द करीम की नजरों में काफिर ही बनूंगा; इसलिए यहां से निकलना चाहिए, देर करने में काम बिगड़ता है। और काम बिगड़ने पर केवल पछतावा ही साथ रहेगा। पछता ही के क्या करूंगा? फिर यहां किसलिए ठहरूं? अगर बच निकला तो एक मुसलमान को काफिरों के पंजे से छुड़ा सकूंगा, और अगर पकड़ा गया, तो इस्लाम के नाम कुरबान हो जाऊं। अस्तु; मौलवी साहब को किसी तरह का कष्ट न उठाना पड़ा। सुगमता से निकल गये, क्योंकि वीर दुर्गादास ने अपने मुगल कैदियों पर कड़ा पहरा न रखा था। दूसरे दिन मौलवी साहब अजमेर पहुंचे और बादशाह से कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। औरंगजेब था। बड़ा ही धूर्त, तुरंत ही एक चिट्ठी अकबरशाह के नाम लिखवाकर एक फकीर को दी, कि इसे दुर्गादास के खेमे में डाल दे। फकीर को इनाम दिया गया। फकीर को कहीं रोक-टोक तो थी नहीं, मांगता-जांचता लश्कर में पहुंचा और अवसर पाकर पत्र दुर्गादास के डेरे में फेंक दिया। दैवयोग से वह पत्र सन्तरी के हाथ लगा, उठाकर दुर्गादास के पास लाया। दुर्गादास ने देखा तो उस पर शाही मुहर थी, और शहजादे के नाम था। खोलकर पढ़ने लगा

'बेटा अकबरशाह! मैं तुम्हारे मुंह पर तुम्हारी बड़ाई नहीं करना चाहता, नहीं तो जितनी बड़ाई की जाय, वह थोड़ी ही है। तुमने काफिरों को फंसाने के लिए अच्छी युक्ति निकाली; मगर देखो, सावधान रहना। दुर्गादास बड़ा ही चालाक है। कहीं काम बिगड़ने न पावे। तैवर खां से सलाह लेते रहना, वह बड़ा पक्का मुसलमान है। बेटा! मैं तुम्हारे पत्र का उत्तर कभी न देता; क्योंकि दूसरे के हाथ में पड़ जाने से काम में बाधा पड़ने का अंदेशा था।; परन्तु फिर यह सोचा कि कदाचित तुम्हें सन्देश बना रहे, कि तुम्हारा पत्र हम तक पहुंचा या नहीं और मैं हो गया या नहीं? इसलिए विवश हुआ।

तुम्हारा पिता।'

यह पत्र पढ़कर दुर्गादास को अकबरशाह पर सन्देह उत्पन्न हो गया। पत्र लिए हुए सीधा जयसिंह के पास पहुंचा। पत्र तो उनके हाथ में दे दिया और पलंग पर बैठकर पापियों के विश्वासघात से होनेवाले परिणाम पर विचार करने

लगा। जयसिंह ने पत्र पढ़ा और म्यान से तलवार खींच ली। दुर्गादास ने कहा – ‘यह क्या? जयसिंह ने कहा – ‘भाई! आप तो क्षमा के अवतार हैं। किसी ने कैसा ही अपराधा क्यों न किया हो आप क्षमा कर देते हैं, परन्तु मुझमें यह दैवी गुण नहीं। दुष्टों को विश्वासघात का मजा चखाऊंगा। दुर्गादास ने कहा – ‘भाई! यह राजपूतों का धर्म नहीं। वे हमारे बन्दी हैं, और इसके अतिरिक्त आज तक उनसे हमारा भाई-चारे का बर्ताव रहा। अब आप उन्हें बिना किसी अपराधा के मारना चाहते हैं, यह अनुचित कार्य करने की मेरी इच्छा नहीं।

जयसिंह ने शान्त होकर पूछा अच्छा! तो बताइये आपकी इच्छा क्या है?

दुर्गादास ने कहा – ‘अगर मेरी इच्छा पूछते हो, तो इन्हें इसी प्रकार सोते ही छोड़ दिया जाय और हम अपनी सेना को देववाड़ी की पहाड़ियों में छिपा दें। औरंगजेब की सेना के आने पर दोनों तरफ से साथ ही धावा बोल दिया जाय। हमें विश्वास है; वह दुतरफा मार कभी न सह सकेगा। अगर भागना चाहेगा, तो सामनेवाले दर्रे के सिवा और दूसरा रास्ता न होगा। और जब दर्रे में फंसा तो उबरना कठिन होगा। फिर या तो हमारी शरण आयेगा या बेमौत मरेगा।

यह सलाह जयसिंह के मन में बैठ गई। धीरे-धीरे राजपूत सरदारों को सचेत किया। सबों ने अपनी-अपनी सेना संभाली और रात के पिछले पहर तक देववाड़ी के पहाड़ी प्रदेश में जा पहुंचे। सवेरा हुआ। तारों की चमक फीकी पड़ने लगी, प्रकाश का रंग बदलने लगा। अपने-अपने घोंसलों से निकलकर पक्षियों ने शाखाओं पर ईश्वर का गुणगान प्रारम्भ किया। अजान सुनकर मुगल सरदारों ने भी नमाज की तैयारी की। खेमे से बाहर निकले थे कि बस, जान सूख गई। कहां की नमाज; और कहां का रोजा! यहां तो प्राणों पर आ बनी। अकबरशाह की तो कुछ पूछो ही न। जो कल बादशाह बने बैठे थे, आज भागने का रास्ता न पाते थे। चेहरे पर जो शाही झलक थी, आज फीकी पड़ गई। सोचने लगा या खुदा! माजरा क्या है! राजपूत सेना थी, कि इन्द्रजाल का तमाशा?

तैवर खां से बोला हमें दुर्गादास के चले जाने का दुःख नहीं। दुःख तो यह है कि चोरी से क्यों चले गये? क्या हम लोग उन्हें रोक लेते? हम लोग तो खुद ही उनके बन्दी थे, फिर छिपकर जाने का कारण क्या था! तैवर खां ने कहा – ‘शाहजादा! इसमें दुःख की कौन बात है? हम लोगों पर दुर्गादास को विश्वास नहीं आया और ठीक भी है! विश्वास कैसे आता? एक मछली सारे ताल को गन्दा कर देती है। फिर बादशाह ने छल-पर-छल किये हैं। यह दुर्गादास की भलमंसी थी, कि हम लोगों को बिना किसी प्रकार का दुःख पहुंचाये ही छोड़कर चला गया। नहीं जान से मार डालता तो हम उसका क्या बना लेते आखिर थे तो उसी के अधीन! जो चाहता, करता।

मुहम्मद खां ने कहा – ‘भाई! दुर्गादास ने जो कुछ किया, अच्छा किया। अब हम लोगों को चाहिए कि दुर्गादास को दिखा दें कि सब आदमी एक-से नहीं होते। अगर कुछ मुसलमान झूठे होते हैं, तो कुछ अपनी प्रतिज्ञा के सच्चे भी होते हैं। इसलिए शाहजादे को जाने दो कि वह दुर्गादास की तलाश करें। हम लोग अपना लश्कर लेकर मोर्चे पर चलें और बादशाह से लोहा लें, मरें या मारें। अपना कर्त्ताव्य पालन करें। यह खबर पाकर दुर्गादास अपनी करतूत पर लज्जित होगा।

तैवर खां को यह सलाह पसन्द आई। अकबरशाह को विदा किया और अपना लश्कर लेकर औरंगजेब के मुकाबिले पर चला। रास्ते ही में औरंगजेब की सेना से मुठभेड़ हो गई। यह लश्कर मुअज्जम और अजीम की सरदारी में था। ये दोनों ही अकबरशाह को अपने पथ का कण्टक समझते थे, परन्तु उन्हें रास्ता साफ करने की घात न मिलती थी। आज मुंहमांगी मुराद मिली। जी तोड़कर लड़ने लगे। पहले तो तैवर खां के सिपाहियों ने बड़ी बहादुरी दिखाई;

मगर फिर मौलवी साहब का फतवा सुनते ही तोते की भांति आंखें बदल दीं और अपने दोनों सरदारों को घेरकर खुद ही मार डाला।

मुहम्मद खां और तैवर खां के मारे जाने के पश्चात अजीम ने अकबरशाह की बहुत खोज की, परन्तु पता न चला। विवश होकर अजमेर लौट पड़ा, क्योंकि सेना आधी से अधिक घायल हो गई थी, इसलिए वीर दुर्गादास का सामना करने की हिम्मत न रही। नहीं तो विजय के घमण्ड में आगे जरूर बढ़ता। घमण्ड तो दुर्गादास चूर ही कर देता; मगर बेचारे अकबरशाह के प्राण न बचते। किसी-न-किसी की दृष्टि पड़ ही जाती क्योंकि वह वीर दुर्गादास की खोज में देववाड़ी की पहाड़ियों पर इधर-उधर भटकता फिरता था। संयोगवश शामलदास के भेंट हो गई, जो पांच सौ सवार लिये देववाड़ी के मार्ग की चौकसी कर रहा था। पहले तो शामलदास को सन्देह हुआ कि कदाचित भेद लेने आया हो; लेकिन बातचीत होते ही सन्देह जाता रहा, और उसे वीर दुर्गादास के पास भेज दिया। शाहजादे को देखकर दुर्गादास लज्जित होकर बोला शाहजादा! मुझे क्षमा करना, मुझसे अपनी इतनी आयु में पहली ही भूल हुई है। आज तक मैंने किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया और न किसी निर्दोष पर तलवार ही उठाई है। आपके साथ जो मुझसे चूक हुई; वह धोखे में हुई। लीजिए यह अपने पिता का पत्र पढ़िए और आप ही कहिए, ऐसी स्थिति में हमारा कत्ताव्य क्या होना चाहिए था।?

शाहजादे ने पत्र पढ़कर कहा – ‘ भाई दुर्गादास, इसमें तुम्हारा दोष नहीं, यह हमारी कम्बख्ती थी। मृत्यु की सामग्री तो पत्र ही में थी, परन्तु न जाने अभी भाग्य में क्या, जो जीवित रहे? खुदा जाने, तैवर खां पर कैसी गुजरी? दुर्गादास ने कहा – ‘ शाहजादा! मुझे दुःख इस बात का है, कि भूल की मैंने और मारे गये मुहम्मद खां और तैवर खां।

दुर्गादास का यह अन्तिम वाक्य पूरा भी न हुआ था। कि 'अल्लाहो अकबर' की आवाज कानों में सुनाई दी। शाहजादे पर फिर सन्देह उत्पन्न हुआ, मगर आगे बढ़कर पहाड़ी से जो नीचे झांका तो औरंगजेब की सेना दर्रे में फंसी देखी। फिर क्या था, राजपूतों को लेकर टूट पड़ा! लगी दुतरफा मार पड़ने। मुगल सेना जिस तरह भागती थी, उसी तरफ अपने को राजपूतों से घिरा पाती थी। दुर्गादास ने सिवा एक पहाड़ी दर्रे के चारों तरफ से देववाड़ी की पहाड़ियां घेर रखी थीं। इस दर्रे के तीनों तरफ ऊंची-ऊंची पहाड़ियां थीं और एक तरफ रास्ता था।; वह भी छोटा-सा। औरंगजेब यह क्या जाने की हमारे बचने का रास्ता नहीं, चूहादान है? पिल पड़ा। पीछे-पीछे लश्कर भी पहुंच गया। राजपूतों ने ऐसा पीछा किया, जैसे चरवाहे भेड़ों को बाड़े में हांकते हैं। जब सारा लश्कर दर्रे में चला गया, तो राजपूतों ने खिलवाड़ की तरह वह भी रास्ता पत्थरों से बन्द कर दिया। पहाड़ियां इतनी ऊंची और इतनी कठिन न थीं कि कोई चढ़ न सके; परन्तु कठिनाई अवश्य थी। रात अभी एक पहर से अधिक तो बीती न थी, लेकिन अंधियारा हो चुका था। और चन्द्रमा का प्रकाश भी इतना न था। उस पर राजपूत ऊपर से पत्थर ढकेल रहे थे। सारांश यह है कि सब ढंग बेमौत मरने के ही थे। फल यह हुआ कि कुछ तो पत्थरों से घायल मर गये और कुछ जीते रहे; परन्तु वे भी मृतकों से किसी दशा में अच्छे न थे। उपाय तो राजपूतों ने यही सोचा था। कि एक भी मुगल जीवित न बचे, और दर्रा भी आधो के लगभग पाट दिया था, परन्तु औरंगजेब के भाग्य को क्या करते। उसे एक छोटी-सी खोह मिल गई। बाप-बेटे दोनों बड़ी सावधानी से उसी में दुबक रहे।

जब राजपूतों का उपद्रव शान्त हुआ, तो दोनों दबे पांव बाहर निकले। रात का पिछला पहर था। चन्द्रदेव अस्त हो चुके थे। हां, चारों तरफ आकाश पर तारे जरूर झिलमिल रहे थे। दुर्गादास अपना लश्कर लेकर बुधाबाड़ी लौट

आया, मैदान साफ था।, इसलिए औरंगजेब को ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ने के सिवा और कोई अड़चन न पड़ी। कोई कहीं देख न ले! शत्रु के हाथ फिर न पड़ जायें! केवल यही भय था। इसलिए अपने को छिपाता हुआ बड़ी सावधानी से इधर-उधर पहाड़ियों में भटकने लगा। जैसे-तैसे भूखा-प्यासा तीसरे दिन अजमेर पहुंचा। अजीम उससे पहले ही वहां पहुंच गया था। औरंगजेब उस पर बहुत झुंझला गया और गुस्सा कुछ अजीम ही पर न था। वह जिसे पाता था, फाड़ खाता था। जलपान के पश्चात जरा जी ठिकाने हुआ, तो सरदारों को बुलाया। जब किसी में वीर दुर्गादास का सामना करने का साहस न देखा तो अपने राज्य के कोने-कोने से मुसलमानी सेना भेजने के लिए सूबेदारों को आज्ञा-पत्र लिखवाये। फिर भी सन्तोष न हुआ। सोचने लगा कि इतनी मुगल सेना, जिसे दुर्गादास का सामना करने को भेज सकूँ, एक सप्ताह में एकत्र होना असम्भव है और दुर्गादास का कुछ ठीक नहीं, न जाने कब अजमेर पर धावा बोल दे? इसलिए कोई जाल फेंकना चाहिए।

दूसरे दिन सरदार जुल्फिकार खां को चालीस हजार अशर्कियां देकर वीर दुर्गादास के पास भेजा। यह सरदार भी बड़ा चतुर था। शाम को दुर्गादास की छावनी में पहुंचा। सवेरे आज्ञा पाकर वीर दुर्गादास के पास गया। सलाम किया और अशर्कियां सामने रखकर बोला ठाकुर साहब! हमारे बादशाह सलामत ने आपको सलाम कहा – ‘हैं; और ये चालीस हजार अशर्कियां भेंट में भेजी हैं। ठाकुर साहब, अब आपको चाहिए कि बादशाह की भेंट को खुशी के साथ स्वीकार करें, और ईश्वर को धान्यवाद दें; क्योंकि बादशाह जल्द किसी पर प्रसन्न नहीं होते। न जाने क्यों आज आपकी बहादुरी पर खुश हो गये! पुरस्कार में ये चालीस हजार अशर्कियां ही नहीं भेजी, साथ ही साथ यह भी कहला भेजा है कि तेजकरण को पांच हजार सवारों का नायक बनाऊंगा और मारवाड़ के सरदारों के अधिकार जैसे राजा यशवन्तसिंह के सामने थे वैसे ही रहेंगे। जिसकी जागीर जब्ती की गई है, वह लौटा दी जायगी। और लौट जाने पर, सब राजपूत बन्दी भी छोड़ दिये जायेंगे। इसलिए कृपा कर मुझे शीघ्र ही लौट जाने की आज्ञा दे और शाहजादे को सादर मेरे साथ कर दें। बादशाह अकबरशाह के वियोग से दुखी हैं। उसे देखते ही बड़ा प्रसन्न होगा; ईश्वर जाने आपके साथ और क्या भलाई करे? अच्छे कामों में देर न करनी चाहिए। शंका विनाश का कारण है। शंका करने से बने-बनाये काम बिगड़ते हैं। अगर मैं खाली हाथ लौटा तो समझे रहिए, राजाओं की प्रसन्नता उतना सुख नहीं देती, जितना कि अप्रसन्नता दुःख देती है। ईश्वर न करे, कहीं बादशाह आपके बर्ताव से चिढ़ जाय, तो यह जान लीजिएगा कि पलक मारते ही जोधपुर का सत्यानाश कर डालेगा। जो बादशाह क्षण-मात्र में बीस लाख सेना इकट्ठी कर सकता है, उसका सामना आप मुट्ठी भर राजपूत लेकर क्या कर सकते हैं? मैं आपकी भलाई के लिए आया हूँ, बुराई के लिए नहीं। अगर आप अपने धर्म को, अपनी बहन-बेटियों की, अपने भोले भाइयों की और देव-मंदिरों की भलाई चाहते हों, तो शाहजादे को हमारे साथ कर दें। ठाकुर साहब, एक के लिए बहुतों को दुःख में डालना चतुराई नहीं।

दुर्गादास चुपचाप सरदार जुल्फिकार खां की बातें सुन रहा था। और सोच रहा था। कि क्या उत्तर दिया जाय? अगर हां, करता हूँ, तो अधर्म होता है। अभयदान देकर शाहजादे को फिर क्योंकर मौत के मुंह में डाल दूं। अगर न करता हूँ तो न जाने सरदारों के मन में क्या हो। दुर्गादास इसी सोच-विचार में पड़ा था। शाहजादा बड़ी देर से दुर्गादास की तरफ देख रहा था। क्या उत्तर देते हैं? जब देखा कि दुर्गादास बोलते ही नहीं, मौनव्रत ही धारण कर लिया है, तो शाहजादे को चिन्ता ने घेर दबाया। उदास मन विचारने लगा कि कदाचित वीर दुर्गादास अपने प्राणों के लालच से मुझे न त्यागा; परन्तु अब तो अपने देश, धर्म और जाति का प्रश्न है। देश की भलाई के निमित्त मुझे अवश्य त्याग देगा; क्योंकि अपनी जाति वालों के आगे मुझ मुगल के प्राणों की उसे क्या परवाह होगी? और उचित भी ऐसा ही है। जहां एक के बलिदान से अनेकानेकों की रक्षा होती हो, इसमें विलम्ब न करना चाहिए। तब

दुर्गादास जुल्फिकार खां की बातों का उत्तर क्यों नहीं देता कदाचि असमंजस में पड़ा हो कि जिसको अभयदान दे चुका है, उसे किस प्रकार त्याग दे? मेरी तो मृत्यु आ ही गई, तब अपने शुभचिन्तक को अधिक कष्ट क्यों पहुंचाऊं?

यह विचार कर शाहजादा उठ खड़ा हुआ और कहने लगा वीर दुर्गादास! मैं आपकी नहीं, बल्कि अपनी इच्छा से सरदार जुल्फिकार खां के साथ जा रहा हूं। इसमें आपका कुछ दोष नहीं; क्योंकि जहां तक हो सका, आपने मेरी रक्षा की। मनुष्य अपनी शक्ति के बाहर क्या कर सकता है? कोई किसी का भाग्य नहीं पलट सकता।

वीर दुर्गादास ने शाहजादे का हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया और बोला, शाहजादे! मैं चालीस हजार क्या, अगर बादशाह अपना राज्य भी देकर तुम्हें लेना चाहे तब भी तुम्हें अब मृत्यु के मुख में नहीं डाल सकता। मैं अपने कुल और जाति को कलंकित नहीं करना चाहता। राजपूतों के मुख में एक ही जिहना होती है। शाहजादा, कदाचित् तुमने यह सोचा हो कि मेरे एक के लिए दुर्गादास अपने देश भर को विपत्ति में क्यों डालेगा? तो यह तुम्हारी भूल है। देखो, केवल महासिंह के लिए हमारे मारवाड़-वासियों ने कितना कष्ट भोगा; परन्तु उसका फल कैसा मिला? कहना व्यर्थ है, हाथकंगन को आरसी क्या। देखो, मारवाड़ स्वतंत्र हुआ। बादशाह ने सलाम के साथ-साथ चालीस हजार की भेंट भेजी है। अब यदि तुम्हारे लिए कष्ट उठाना पड़ेगा तो उससे भी अच्छे फल की आशा है। अंधोरे के बाद ही उजाला होता है। दुःख भोगने के पश्चात् ही सुख का आनन्द मिलता है। मिट्टी में मिल जाने के पश्चात् ही बीज हरा-भरा वृक्ष बनता है।

दुर्गादास को इस प्रकार शाहजादे को तसल्ली देते देख, जयसिंह को अब सरदार जुल्फिकार खां की बातों का जवाब देने में सहायता मिली। बड़ी नरमी के साथ बोला जुल्फिकार खां। तुम्हारे बादशाह ने आज तक राजपूत के लिए कौन ऐसा कष्ट पहुंचाने वाला काम था, जो न किया हो? अब उससे अधिक कष्ट देने वाला कौन-सा उपाय सोच रखा है, जिसकी धामकी देता है। देव-मन्दिरों को तोड़कर मसजिदें बनवाईं, धर्म-पुस्तकों को जलवाया, ब्राह्मणों के जनेऊ तुड़वाये, सती अबलाओं का सतीत्व नष्ट कराया, तीर्थयात्रियों पर जजिया नामक कर लगाया और बिना अपराधा ही के बेचारे निर्दोष राजपूतों को बन्दी-गृह का कष्ट भुगवाया। बहुतों को फांसी दिलाई अब तुम्हीं कहो, प्राण-दण्ड से अधिक और कौन दण्ड होगा। भाई, हम राजपूतों के साथ यदि वह न्याय का बर्ताव करता, तो हम लोग काले सर्प के समान उसे कभी न डसते, वरन् श्वान के समान उसकी सेवा करते। यह नौबत कभी न आती कि इतना बड़ा बादशाह एक राजद्रोही के लिए प्रजा को झुककर सलाम करे! चालीस हजार अशर्कियों का लोभ दिलाये।

दुर्गादास ने कहा – ‘ भाई जयसिंह, आप ऐसी बातें किससे और किसलिए कर रहे हैं? मैं अभी तक इसलिए मौन बैठा रहा कि जुल्फिकार खां ने वृथा। बातें करके अपना समय क्यों नष्ट करूं? इनसे बातें करने में कोई लाभ तो है ही नहीं, उत्तर देकर क्या करें। इन्हें जो कुछ कहना है, कह लेने दो। बादशाह ने न धामकी दी है और न लालच, यह धोखेबाजी और जाल है। सरदार जुल्फिकार खां, आप अपनी ये अशर्कियां लीजिए, क्योंकि पाप से कमाये हुए धान की भेंट राजपूत कभी स्वीकार नहीं कर सकते! और न शरण में आये हुए को अपने प्राण रहते त्याग ही सकते हैं। इसलिए आप खुशी से लौट जाइए, और बादशाह के सलाम के जवाब में सलाम कहिए। जुल्फिकार खां ने अब भी बहुत कुछ कहा – ‘ सुना; परन्तु राजपूती हठ (प्राण जाहिं बरु वचन न जाहीं) कब छूट सकता है। अन्त में लाचार होकर जुल्फिकार खां को लौटना ही पड़ा।

जुल्फिकार खां के चले जाने के थोड़ी देर बाद उदयपुर के राणा का छोटा बेटा भीमसिंह आया। सब सरदारों से मिल-भेंटकर दुर्गादास के पास बैठ गया। जयसिंह ने पूछा भैया भीमसिंह! घुड़ाये से क्यों हो! क्या कोई नई बात है? भीमसिंह ने कहा – ‘घबराहट नहीं; परन्तु आश्चर्य अवश्य है। वह यह कि आप सबको निरुश्रुत देख रहा हूँ। अभी तक आप लोगों ने अजमेर पर चढ़ाई क्यों न की? अवसर अच्छा था।, अब वह समय हाथ से निकल गया। औरंगजेब ने चारों तरफ लड़ाई बन्द करवा दी और सब मुगल-सेवा अजमेर बुला ली है। ईश्वर ही जाने अब मारवाड़ी की क्या दशा होने वाली है।

केसरीसिंह सबसे वृद्ध सरदार था।, बोला भाइयो! हमें अपनी या मारवाड़ की कोई चिन्ता नहीं। हमारा पहला धर्म है कि शाहजादे की रक्षा का प्रबन्ध किया जाय, पश्चात् औरंगजेब से लोहा लें। यह बात सब राजपूत सरदारों के मन में बैठ गई। वे सोचने लगे कि शाहजादे को कहां भेजा जाय, जहां उनकी रक्षा में किसी प्रकार की त्रुटि न हो? भीमसिंह ने कहा – ‘महाराज, शिवाजी का पुत्र वीर शम्भा जी इनकी रक्षा कर सकेगा; क्योंकि एक तो वह वीर पुरुष है, दूसरे औरंगजेब का कट्टर शत्रु है, तीसरे अब वहां मुगल सेना नहीं है। लड़ाई बन्द है, सब तरह की सुविधा है। वीर दुर्गादास तथा। शाहजादे ने स्वयं शम्भाजी के पास जाना पसन्द किया।

शाम को दुर्गादास थोड़े-से सवारों को साथ लेकर शम्भाजी के पास चला और चलते समय सेना को मोर्चे पर ले जाने के लिए सरदारों को आज्ञा देता गया। शहजादे को साथ लिए एक बहुतेक जंगल-पहाड़ पार करता हुआ तीसरे दिन शम्भाजी के यहां पहुंचा। शम्भा जी ने देखते ही शाहजादे को पहचान लिया और बड़े आदर-भाव से मिला। निश्चिन्त होने के पश्चात् दुर्गादास ने उससे अपने आने का कारण कह सुनाया। शम्भाजी ने अपना हार्दिक हर्ष प्रकट किया और कहा – ‘भाई दुर्गादास! हम लोगों का मुख्य धर्म ही है कि शरणागत की रक्षा करें। फिर शहजादे ने तो हमारे साथ बड़ा उपकार किया है। जब दिल्ली के कारागार में मैं और मेरे पूज्य पिताजी दोनों बन्दी थे, उस समय शहजादे ने हमारी बड़ी सहायता की। इनका दिया हुआ घोड़ा अभी तक हमारे पास है। मैं इनकी रक्षा अपने प्राणों के समान करूंगा। अब आप इनसे निश्चिन्त रहिए।

रात को दुर्गादास ने वहीं विश्राम किया, दूसरे दिन शम्भा जी से विदा हो मारवाड़ की तरफ चल दिया। गुजरात के आगे एक पहाड़ी पर खड़े शामलदास मेड़तिया से भेंट हुई। यह अपनी सेना लेकर जयसिंह के आज्ञानुसार दक्षिण प्रांत से आने वाली मुगल- सेना रोकने के लिए रास्ते में आ डटा था। यह हाल दुर्गादास को मालूम न था।; इसलिए शामलदास ने कहा – ‘महाराज! आपके चले जाने के पश्चात् सब सरदारों ने यह सलाह की कि मुगल-सेना जो हम लोगों की असावधानी के कारण अजमेर आ चुकी सो आ चुकी परन्तु अब दूर से आने वाली सेना के सब मार्ग रोक दिये जायें। नहीं तो स्वप्न में भी जय पाना कठिन होगा। यह सोचकर सरदारों ने कुछ सेना बंगाल, मद्रास और पंजाब की तरफ भेद दी है। अब जहां तक हो सके शीघ्र ही पहुंचिए। कदाचित् आज ही आपका रास्ता देखकर सरदार शोनिंगजी अजमेर पर चढ़ाई कर दें।

यह सुनकर वीर दुर्गादास शामलदास को युद्ध के विषय में कुछ समझा-बुझाकर घोड़े पर सवार हुआ। लगाम खींचते ही घोड़ा हवा से बातें करता हुआ चल दिया। रात के पिछले पहर बुधावाड़ी पहुंचा, मालूम हुआ सेना मोर्चे पर गई है। यद्यपि वीर दुर्गादास और घोड़ा दोनों ही लस्त हो चुके थे; परन्तु दुर्गादास तो देश-सेवा के लिए अपना शरीर अर्पण कर चुका था। बिना मारवाड़ स्वतन्त्रा किये उसे चैन कब था।, सीधा अजमेर भाग और पौ फटने के पहले अपनी सेना में पहुंच गया। यह सब समाचार औरंगजेब को मिला तो वह घबड़ा उठा; क्योंकि अजमेर में

अभी तक मुगल सेना के दो ही भाग आ सके थे। बाकी सेना की प्रतीक्षा की जा रही थी। बादशाह को अपनी आधी सेना पर काफी भरोसा न था। : इसलिए दूसरा जाल रचा और सवेरा होते ही सरदार दिलेर खां के हाथ सन्धि का सन्देश भेजा। वीर दुर्गादास ने कहा – ‘ सरदार दिलेर खां! भोले राजपूतों ने बहुत धोखे खाये। अब हम लोग तुम्हारे बादशाह की जबानी बातचीत पर विश्वास नहीं करेंगे; अगर वह सचमुच सन्धि करना चाहता है तो बादशाही मुहर लगाकर पत्र लिखे कि हमारे धर्म पर आक्षेप न करेंगे, हिन्दू और मुसलिम में कोई अन्तर न समझेंगे, योग्यता पर ही ओहदे दिये जायेंगे; यदि तुम्हारा बादशाह ऐसा स्वीकार करता है तो हम लोग भी सन्धि को तैयार हैं। नहीं तो हाथ में ली हुई तलवारें मारने के बाद ही हाथ से छूटेंगी। बस जाओ, हमें जो कुछ कहना था, कह चुके, अब हमारे कहने के विरुद्ध यदि उत्तार लाना हो तो युद्ध-स्थल में तलवार लेकर आना।

दिलेर खां कोरा उत्तार पाकर औरंगजेब के पास लौट गया और दो की चार बताई। सुनते ही औरंगजेब जल उठा। और तुरन्त ही युद्ध की तैयारी के लिए डंका बजवा दिया। मुगल-सेना मैदान में एकत्र हुई। उस समय एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर औरंगजेब ने धर्म उपदेश किया और सैनिकों को यहां तक उत्तोजित किया कि धार्मान्धा मुगलों को लड़ाई की दाव-घात की सुधि न रही। जिस प्रकार लहरें किनारे की चट्टानों से टकराकर फिर जाती हैं, उसी प्रकार मुगल सेना राजपूतों से टक्कर लेने लगी। वीर राजपूतों ने बड़ी सावधानी से हमलों को रोका और देखते-देखते आधी मुगल सेना काट डाली। धार्मान्धा औरंगजेब की आंखें खुलीं। सारा धर्म का घमण्ड जाता रहा। प्राणों के लाले पड़े। दायें-बायें झांकने लगा और मौका पाकर प्राण ले भाग। सेना की भी हिम्मत टूट गई। पैर उखड़ गये। बादशाह के भागते ही सेना भी भाग खड़ी हुई। किले के अलावा दूसरी तरफ मार्ग न मिला; क्योंकि राजपूतों ने अपूर्व व्यूह-रचना की थी। जब मुगल-सेना किले में जा घुसी तो राजपूतों ने चारों तरफ से किला घेर लिया। उसी समय एक भेदिये ने बादशाह को खबर पहुंचाई कि शामलदास और दयालदास ने दक्षिण से आने वाली सेना का एक भी सिपाही जीवित नहीं छोड़ा और मालवे में भी राजपूतों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा है। यह समाचार सुनकर औरंगजेब घबड़ा गया और राजपूतों से सन्धि कर लेने का निश्चय किया। अपने बड़े बेटे मुअज्जम को बुलाकर राजपूतों की मांगें सन्धि-पत्र पर लिखाकर बादशाही मोहर लगाई और दुर्गादास को भेज दिया। वीर दुर्गादास ने सन्धि-पत्र पढ़कर अपने सरदारों को सुनाया। किले का द्वार खोल दिया। बादशाही झण्डे की जगह राजपूती झण्डा फहराया गया। मारवाड़ की सब छोटी-बड़ी रियासतों को विलय-समाचार भेजा गया। और कुंवर अजीतसिंह ने राज्यभिषेक में सम्मिलित होने के लिए उन्हें निमन्त्रित किया गया।

वीर दुर्गादास ने कुंवर अजीतसिंह का राजतिलक औरंगजेब के हाथों करवाना निश्चिन्त किया था।, इसलिए उसे दिल्ली जाने से रोक लिया। दूसरे दिन वीर दुर्गादास अपने साथ करणसिंह, गंभीरसिंह तथा। थोड़े-से सवार लेकर आबू की घनी पहाड़ियों में बसे हुए डुडंवा गांव में पहुंचे। जयदेव ब्राह्मण के द्वार पर भीलों के लड़कों के साथ आनन्द से खेलते हुए कुंवर अजीतसिंह को देखा। यद्यपि अजीत अब आठ वर्ष का हो चुका था।; परन्तु राजचिह्नों को देखकर दुर्गादास ने पहचान लिया। आंखों में आनन्द के आंसू भर आये। अजीत को गोद में उठा लिया। उसी समय आनन्ददास खेंची भी आ पहुंचे। बड़े प्रेम से एक दूसरे के गले मिले। दुर्गादास ने खेंची महाशय को आठ वर्ष के अच्छे-बुरे समाचार कह सुनाये। अजमेर की विजय और कुंवर अजीतसिंह की राजगद्दी सुनकर सबको बड़ा ही आनन्द हुआ। यह शुभ समाचार वायु के समान क्षण भर में सारे गांव में फैल गया।

नगरवासी तथा। राजकुमार के साथ खेलने वाले सब साथी इकट्ठे हो गये। अब राजकुमार के भोले-भाले मुख पर अलबेली राजश्री प्रकाश था।छोटे-छोटे लड़के आपस में कहते थे भाई! हम लोगों ने अनजाने में बड़े अपराधा किये

हैं। हजारों बार खेल में राजकुमार को मारा होगा। भाई, एक दिन वह था। कि राजकुमार हम लोगों के साथ धूल में खेलते थे। अब कल वह दिन होगा कि सारे मारवाड़ देश के स्वामी बनकर राज-सिंहासन पर शोभा पायेंगे। राजमद में चूर होकर हम दीन-सखाओं की ओर फिर कृपा-दृष्टि क्यों करने लगे? इसी प्रकार अपनी-अपनी कहते थे और राजकुमार के मुख की ओर एकटक देख रहे थे। राजकुमार भी अपने प्यारे मित्रों की तरफ बड़े प्रेम से देख रहा था। और सोच रहा था। कि चाचाजी इन सबको हमारे साथ ले चलेंगे या नहीं? एक बार अपने मित्रों की तरफ देखकर आनन्ददास खेंची की ओर देखा। खेंची महाशय ने राजकुमार का अभिप्राय समझकर बालकों से कहा – ‘जाओ, अपने-अपने पिता को लेकर राजकुमार के साथ चलो, तुम लोगों के लिए इससे बढ़कर आनन्द का समय और कब होगा, कि तुम्हारे साथ खेलने वाला आज मारवाड़ देश का स्वामी हो!

थोड़ी ही देर में सारे नगर-निवासी राजकुमार का राजतिलक देखने के लिए साथ चलने के लिए तैयार होकर पहुंचे। जिससे जो हो सका, राजा को भेंट की सामग्री भी अपने साथ ले चला। राजकुमार अपने मित्रों को अपने साथ चलते देख बड़ा मगन था। उमर ही अभी खेल-कूद की थी। था। तो केवल आठ वर्ष का! क्या जाने राज्य किसको कहते हैं? राजतिलक क्या होता है? वह तो यह सब खेल समझता था। आज तक उस बेचारे के सामने कभी पूज्य पिता का भी नाम न लिया गया था। वह संसार में किसी को अपना जानता था।, तो आनन्ददास खेंची को और देव शर्मा तथा। देव शर्मा की स्त्री को, जिन्हें वह चाचा-चाची कह कर बुलाता था।।

गीदड़ों में पला हुआ सिंह का बच्चा चाहे उसके स्वाभाविक गुण नष्ट न हुए हों अपने को सिंह नहीं समझता, जब तक सिंहों के साथ न पड़े। यही बात राजकुमार अजीत के साथ थी। भीलों के साथ पाला गया था। फिर राज्य करना क्या जाने? अपने मित्रों से हंस्ता-बोलता दूसरे दिन यात्रा समाप्त कर दो-पहर दिन ढलते अजमेर आ पहुंचा। यहां भारी भीड़ थी। एक ओर मुगल सेना दूसरी ओर राजपूत सेना, सुन्दर वस्त्रों से विभूषित, राजकुमार का स्वागत करने के लिए खड़ी थी। स्थान-स्थान पर बाजे बज रहे थे, नाच-गान हो रहा था। ऐसा कोई भी घर न था।, जिसके द्वार पर बन्दनवार न बंधी हो, मंगलकलश न धारे हों। घर-घर आनन्द मनाया जा रहा था।, और जय-ध्वनि आकाश में गूंज रही थी। मारवाड़ की छोटी-बड़ी सब रियासतों के सरदार उपस्थित थे। राजकुमार का स्वागत बड़ी धूम-धाम से किया गया, और शुभ मुहूर्त में उसे सोने के सिंहासिन पर बैठाकर औरंगजेब के हाथों तिलक कराया गया। सरदारों ने राजकुमार के चरणों पर शीश झुकाया और यथा।शक्ति नजरें दी। उसी समय वृद्ध नाथू को साथ लिए हुए बाबा महेन्द्रनाथ जी पधारे। उपस्थित जनता ने उनका बड़ा सत्कार किया। नाथू ने स्वामी को महाराज यशवन्तसिंह की दी हुई लोहे की सन्दूकची सौंपी, जिसे वीर दुर्गादास ने भरे दरबार में महाराज अजीतसिंह को समर्पण कर दिया; और महाराज यशवन्तसिंह जी ने जिस अवस्था में और जो कुछ कहकर शोनिंग जी चम्पावत को सन्दूकची सौंपी थी, वह कह सुनाई। अजीतसिंह ने सन्दूकची बड़े मान के साथ लेकर दुर्गादास को फिर दे दी और उसे खोलकर प्रजा को दिखलाने की आज्ञा दी। सन्दूकची दरबार में खोली गई। उसमें महाराज यशवन्तसिंह का राजमुकुट राजकुमार को पहना दिया और जनता के सामने खड़े होकर राजकुमार अजीतसिंह के जन्म से लेकर राजतिलक-पर्यन्त जो-जो घटनाएं हुई थीं, कह सुनाई। दैवयोग वह मुसलमान मदारी भी मिल गया, जो खेंची महाशय और अजीत को छिपाकर लाया था। उसकी गवाही ने प्रजा का सन्देश समूल नष्ट कर दिया! वीर दुर्गादास को प्रजा ने कोटिशः धान्यवाद दिये, क्योंकि महाराज यशवन्तसिंह जी के वंश तथा। राज्य के रक्षक ये ही थे।

राजपूतों का यह आनन्दोत्सव औरंगजेब को अच्छा न लगता था।; इसलिए केवल तीन दिन अजमेर में रहकर महाराज अजीतसिंह से विदा हो दिल्ली चला गया। जोधपुर की प्रजा राजकुमार के दर्शन के लिए बड़ी उत्सुक थी। थोड़े दिनों तक रास्ता देखती रही, जब राजकुमार को जोधपुर में न देखा, तो वृद्धों और बालकों को छोड़कर, जिनकेमें चलने की शक्ति न थी, बाकी सब-की-सब अजमेर को चल दी। कई एक दिन में गाते-बजाते आनन्द मानते प्रजाजन अजमेर पहुंचे। वीर दुर्गादास ने अपने राजकुमार पर प्रजा का इतना प्रेम देखकर दरबार किया। सबने अपने इच्छानुरूप दर्शन किये और उनसे जोधपुर की सूनी गद्दी शोभित करने की प्रार्थना की। महाराज ने अपने पूज्य पिता की गद्दी पर बैठना स्वीकार किया। लगभग तीन मास अजमेर में रहकर महाराज जोधपुर चले आये। आज प्रजा को जैसा आनन्द हुआ, कदाचित् महाराज यशवन्तसिंह के शासन-समय में न हुआ हो। घर-घर हवन होता था।, द्वारे-द्वारे मंगल कलश धरे थे। बन्दनवारें बंधी थी। सुगन्धित फूलों की मालाएं लटकी थीं। शीतल वायु चल रही थी। दरबार में सुन्दर वस्त्र पहने सरदार तथा। योग्यतानुरूप जनता बैठी थी। सामने सोने के सिंहासन पर महाराज अजीतसिंह बैठे थे। पास ही वीर दुर्गादास खड़ा हुआ महाराज के आज्ञानुसार, सहायता करने वाले राजपूतों को उनकी जागीरों में कुछ बढ़ती करता और पट्टे बांट रहा था। वृद्ध महासिंह को कोषाध्यक्ष बनाया, गुलाबसिंह तथा। गम्भीरसिंह को महाराज का रक्षक नियुक्त किया। करणसिंह को सेना-नायक बनाया। और दरबारियों की अनुमति से अपने ऊपर राज्य-भार लिया। अन्त में महासिंह की कन्या लालवा की बारी आई। दुर्गादास ने उसको सबसे अच्छा और अमूल्य पुरस्कार दिया; अर्थात् राणा राजसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह के साथ विवाह निश्चित कराया और राज्य की ओर से ही बड़ी धू-धाम के साथ विवाह कर दिया।

इन सब आवश्यक कामों से छुट्टी पाने के बाद एक दिन दुर्गादास को शाहजादे अकबरशाह की याद आई; परन्तु शाहजादा वहां न मिला। पता लगाने पर मालूम हुआ कि दक्षिण में औरंगजेब की सहायता के लिए जब मुगल सेना जाने लगी तो शाहजादे ने शम्भाजी को उसके रोकने की अनुमति दी, परन्तु शम्भा जी ने सुनी अनसुनी कर दी। इस बात पर शाहजाद रुष्ट होकर मक्का चला गया और थोड़े दिनों के बाद वहीं उसका देहान्त हो गया। इस समाचार से दुर्गादास को बड़ा दुःख हुआ; परन्तु करता क्या? ईश्वरेच्छा समझकर मन को शान्त किया। खुदाबख्श तथा। मुसलमान मदारी को महाराज ने अपने दरबार में रखा और सदैव उनका मान करते रहे। अपने साथ खेलने वाले भील बालकों की शिक्षा का जोधपुर में ही प्रबन्धा कराया और उनके पिताओं को बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान की। दुर्गादास ऐसी नीति से राज्य था। कि किसी प्रकार कष्ट न था। शेर-बकरी एक ही घाट पानी पीते थे। चोरी-चमारी का मारवाड़ देश में नाम भी न था।; प्रजा निश्चिन्त और सुख से रहती थी। खजाना उदारता के साथ लुटाने पर भी बढ़ता ही था। टूटे-फूटे किलों की उचित रूप से दुरुस्ती कराई गयी। जहां कहीं नये किले की आवश्यकता हुई, तो नया बनवाया गया। महाराज ने उजड़ा हुआ कल्याणगढ़ फिर से बसाने की आज्ञा दी।

अब महाराज अजीतसिंह की आयु अठारह वर्ष की थी। धीरे-धीरे राज्य का काम समझ गये थे, और इस योग्य हो गये थे कि दुर्गादास की सहायता बिना ही राज्य-भार वहन कर सकें। यह देखकर वीर दुर्गादास ने संवत् 1758 वि. में महाराज अजीत को भार सौंप दिया। जरूरत पड़ने पर अपनी सम्मति दे दिया करता था। जब 1765 वि. में औरंगजेब दक्षिण में मारा गया तो उसका ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम गद्दी पर बैठा और अपने पूर्वज बादशाह अकबर की भांति अपनी प्रजा का पालन करने लगा। हिन्दू-मुसलमान में किसी प्रकार का भेदभाव न रखा। यह देख दुर्गादास ने निश्चिन्त होकर पूर्ण रूप से राज्यभार अजीतसिंह को सौंप दिया, किन्तु स्वतन्त्र होकर अजीतसिंह के स्वभाव में बहुत परिवर्तन होने लगा। फूटी हुई क्यारी के जल के समान स्वच्छन्द हो गया। अपने स्वेच्छाचारी मित्रों के कहने से प्रजा को कभी-कभी न्याय विरुद्ध भारी दण्ड दे देता था। क्रमशः अपने हानि-लाभ पर विचार करने की

शक्ति क्षीण होने लगी। जो जैसी सलाह देता था, करने पर तैयार हो जाता था। स्वयं कुछ न देखता था, कानों ही से सुनता था। जिसने पहले कान फूँके, उसी की बात सत्य समझता था। धीरे-धीरे प्रजा भी निन्दा करने लगी। दुर्गादास ने कई बार नीति-उपदेश किया, बहुत कुछ समझाया-बुझाया, परन्तु कमल के पत्तों पर जिस प्रकार जल की बूंद ठहर जाती है, और वायु के झकोरे से तुरन्त ही गिर जाती है, उसी प्रकार जो कुछ अजीतसिंह के हृदय-पटल पर उपदेश का असर हुआ, तुरन्त ही स्वार्थी मित्रों ने निकाल फेंका और यहां तक प्रयत्न किया कि दुर्गादास की ओर से महाराज का मनमालिन्य हो गया। धीरे-धीरे अन्याय बढ़ता ही गया। विवश होकर दुर्गादास ने अपने परिवार को उदयपुर भेज दिया और अकेला ही जोधपुर में रहकर अन्याय के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

मनुष्य अपने हाथ से सींचे हुए विष-वृक्ष को भी जब सूखते नहीं देख सकता, तो यह तो वीर दुर्गादास के पूज्य स्वामी श्री महाराज यशवन्तसिंह जी का पुत्र था। उसका नाश होते वह कब देख सकता था। परन्तु करता क्या? स्वार्थी मित्रों के आगे उसकी दाल न गलती थी, अतएव जोधपुर से बाहर ही चला जाना निश्चित किया। अवसर पाकर एक दिन महाराज से विदा लेने के लिए दरबार जा रहा था। रास्ते में एक वृद्ध मनुष्य मिला, जो दुर्गादास का शुभचिन्तक था। कहने लगा भाई दुर्गादास! अच्छा होता, यदि आप आज राज-दरबार न जाते; क्योंकि आज दरबार जाने में आपकी कुशल नहीं। मुझे जहां तक पता चला है वह यह कि महाराज ने अपने स्वार्थी मित्रों की सलाह से आपके मार डालने की गुप्त रूप से आज्ञा दी है। दुर्गादास ने कहा – ‘भाई! अब मैं वृद्ध हुआ, मुझे मरना तो है ही फिर क्षत्रिय होकर मृत्यु से क्यों डरूं? राजपूती में कलंक लगाऊं; मौत से डरकर पीछे लौट जाऊं! इस प्रकार कहता हुआ निर्भय सिंह के समान दरबार में पहुंचा और हाथ जोड़कर महाराज से तीर्थयात्र के लिए विदा मांगी। महाराज ने ऊपरी मन से कहा – ‘चाचाजी! आपका वियोग हमारे लिए बड़ा दुखद होगा; परन्तु अब आप वृद्ध हुए हैं, और प्रश्न तीर्थयात्र का है; इसलिए नहीं भी नहीं की जाती। अच्छा तो जाइए, परन्तु जहां तक सम्भव हो शीघ्र ही लौट आइए। दुर्गादास ने कहा – ‘महाराज की जैसी आज्ञा और चल दिया; परन्तु द्वार तक जाकर लौटा। महाराज ने पूछा चाचा जी, क्यों? दुर्गादास ने कहा – ‘महाराज, अब आज न जाऊंगा; मुझे अभी याद आया कि महाराज यशवन्तसिंह जी मुझे एक गुप्त कोश की चाबी दे गये थे, परन्तु अभी तक मैं न तो आपको गुप्त खजाना ही बता सका और न चाबी ही दे सका; इसलिए वह भी आपको सौंप दूं, तब जाऊं? क्योंकि अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूं, न-जाने कब और कहां मर जाऊं? तब तो यह असीम धान-राशि सब मिट्टी में मिल जायेगी। यह सुनकर अजीतसिंह को लोभ ने दबा लिया। संसार में ऐसा कौन है, जिसे लोभ ने न घेरा हो? किसने लोभ देवता की आज्ञा का उल्लंघन किया है? सोचने लगा; यदि मेरे आज्ञानुसार दुर्गादास कहीं मारा गया, तो यह सम्पत्ति अपने हाथ न आ सकेगी। क्या और अवसर न मिलेगा? फिर देखा जायगा। यह विचार कर अपने मित्रों को संकेत किया। इसका आशय समझ कर एक ने आगे बढ़कर नियुक्त पुरुष को वहां से हटा दिया। इस प्रकार धोखे से धान का लालच देकर चतुर दुर्गादास ने अपने प्राणों की रक्षा की। घर आया, हथियार लिये, घोड़े पर सवार हुआ और महाराज को कहला भेजा कि दुर्गादास कुत्तों की मौत मरना नहीं चाहता था। रण-क्षेत्र में जिस वीर की हिम्मत हो आये। अजीतसिंह यह सन्देश सुनकर कांप गया। बोला दुर्गादास जहां जाना चाहे, जाने दो। जो औरंगजेब सरीखे बादशाह से लड़कर अपना देश छीन ले, हम ऐसे वीर पुरुष का सामना नहीं करते।

वीर दुर्गादास इस प्रकार महाराज अजीतसिंह से विरक्त होकर और अपनी उज्ज्वल कीर्ति के फलस्वरूप अनादर और उपेक्षा पाकर उदयपुर चला गया। यहां उस समय राणा जयसिंह अपने पूज्य पिता राणा राजसिंह के बाद गद्दी पर बैठे थे। अजीतसिंह का ऐसा बुरा बर्ताव सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। परस्पर का मित्र-भाव छोड़ दिया। वीर दुर्गादास को अपने परिवार के मनुष्यों की भांति मानकर जागीर प्रदान की। थोड़े दिन तक दुर्गादास महाराज के

दरबार में रहा, फिर आज्ञा लेकर एकान्तवास के लिए उज्जैन चला गया। वहां महाकलेश्वर का पूजन करता रहा। संवत् 1765 वि. में वीर दुर्गादास का स्वर्गवास हुआ। जिसने यशवन्तसिंह के पुत्र की प्राण-रक्षा की और मारवाड़ देश का स्वामी बनाया, आज उसी वीर का मृत शरीर क्षिप्रा नदी की सूखी झाऊ की चिता में भस्म किया गया। विधाता! तेरी लीला अद्भुत है।

>>पीछे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

रामचर्चा
प्रेमचंद

[अनुक्रम](#)

अध्याय 3

[पीछे](#)
[आगे](#)**भरत और रामचन्द्र**

इधर भरत अयोध्यावासियों के साथ राम को मनाने के लिए जा रहे थे। जब वह गंगा नदी के किनारे पहुंचे, तो भील सरदार गुह को उनकी सेना देखकर सन्देह हुआ कि शायद यह रामचन्द्र पर आक्रमण करने जा रहे हैं। तुरन्त अपने आदमियों को एकत्रित करने लगा। किन्तु बाद को जब भरत का विचार ज्ञात हुआ तो उनके सामने आया और अपने घर चलने का निमन्त्रण दिया। भरत ने कहा—जब रामचन्द्र ने बस्ती के बाहर पेड़ के नीचे रात बितायी, तो मैं बस्ती में कैसे जाऊं? बताओ, सीता और रामचन्द्र कहां सोये थे? तब गुह ने उन्हें वह जगह दिखायी, तो भरत अपने आप रो पड़े—हाय, वह जिन्हें महलों में नींद नहीं आती थी, आज भूमि पर पेड़ के नीचे सो रहे हैं! यह दिनों का फेर है। मुझ अभागे के कारण इन्हें यह सारे कष्ट हो रहे हैं। इन घास के कड़े टुकड़ों से कोमलांगी सीता का शरीर छिल गया होगा। रामचन्द्र को मच्छरों ने रात भर कष्ट दिया होगा। नींद न आयी होगी। लक्ष्मण ने जंगली जानवरों के भय से सारी रात पहरा देकर काटी होगी और मैं अभी तक राजसी पोशाक पहने हूं। मुझे हजार बार धिक्कार है !

यह कहकर भरत ने उसी समय राजसी पोशाक उतार फेंकी और साधुओं कासा वेश धारण किया। फिर उसी पेड़ के नीचे, उसी घासफूस के बिछावन पर रातभर पड़ रहे। उस दिन से चौदह साल तक भरत ने साधुजीवन व्यतीत किया।

दूसरे दिन भरत भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। वहां पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र चित्रकूट की ओर गये हैं। रातभर वहां ठहरकर भरत सबेरे चित्रकूट रवाना हो गये।

सन्ध्या का समय था। रामचन्द्र और सीता एक चट्टान पर बैठे हुए सूर्यास्त का दृश्य देख रहे थे और लक्ष्मण तनिक दूर धनुष और बाण लिये खड़े थे।

सीता ने पेड़ों की ओर देखकर कहा—ऐसा परतीत होता है, इन पेड़ों ने सुनहरी चादर ओ ली है।

राम—पहाड़ियों की ऊदी रंग की ओस से लदी हुई चादर कितनी सुन्दर मालूम होती है। परकृति सोने का सामान कर रही है।

सीता—नीचे की घाटियों में काली चादर से मुंह ढांक लिया।

राम—और पवन को देखो, जैसे कोई नागिन लहराती हुई चली जाती हो।

सीता—केतकी के फूलों से कैसी सुगन्ध आ रही है।

लक्ष्मण खड़ेखड़े एकाएक चौंककर बोले—भैया, वह सामने धूल कैसी उड़ रही है? सारा आसमान धूल से भर गया।

राम—कोई चरवाहा भेड़ों का गल्ला लिए चला जाता होगा।

लक्ष्मण—नहीं भाई साहब, कोई सेना है। घोड़े साफ दिखायी दे रहे हैं। वह लो, रथ भी दिखायी देने लगे।

रामचन्द्र—शायद कोई राजकुमार आखेट के लिए निकला हो।

लक्ष्मण—सबके सब इधर ही चले आते हैं।

यह कहकर लक्ष्मण एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ गये, और भरत की सेना को ध्यान से देखने लगे। रामचन्द्र ने पूछा—कुछ साफ दिखायी देता है?

लक्ष्मण—जी हां, सब साफ दिखायी दे रहा है। आप धनुष और बाण लेकर तैयार हो जायें। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि भरत सेना लेकर हमारे ऊपर आक्रमण करने चले आ रहे हैं। इन डालों के बीच से भरत के रथ की झण्डी साफ दिखायी दे रही है। भली परकार पहचानता हूं, भरत ही का रथ है। वही सुरंग घोड़े हैं। उन्हें अयोध्या का राज्य पाकर अभी सन्तोष नहीं हुआ। आज सारे झगड़े का अन्त ही कर दूंगा।

रामचन्द्र—नहीं लक्ष्मण, भरत पर सन्देह न करो। भरत इतना स्वार्थी, इतना संकोचहीन नहीं है। मुझे विश्वास है कि वह हमें वापस ले चलने आ रहा है। भरत ने हमारे साथ कभी बुराई नहीं की।

लक्ष्मण—उन्हें बुराई करने का अवसर ही कब मिला, जो उन्होंने छोड़ दिया? आपअपने हृदय की तरह औरों का हृदय भी निर्मल समझते हैं। किन्तु मैं आपसे कहे देता हूं कि भरत विश्वासघात करेंगे। वह यहां इसी उद्देश्य से आ रहे हैं कि हम लोगों को मार कर अपना रास्ता सदैव के लिए साफ कर लें।

रामचन्द्र—मुझे जीतेजी भरत की ओर से ऐसा विश्वास नहीं हो सकता। यदि तुम्हें भरत का राजगद्दी पर बैठना बुरा लगता हो, तो मैं उनसे कहकर तुम्हें राज्य दिला सकता हूं। मुझे विश्वास है कि भरत मेरा कहना न टालेंगे।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। रामचन्द्र का व्यंग्य उन्हें बुरा मालूम हुआ। पर मुंह से कुछ बोले नहीं। उधर भरत को ज्योंही ऋषियों की कुटियां दिखायी देने लगीं, वह रथ से उतर पड़े और नंगे पांव रामचन्द्र से मिलने चले। शत्रुघ्न और सुमन्त्र भी उनके साथ थे। कई कुटियों के बाद रामचन्द्र की कुटी दिखायी दी। रामचन्द्र कुटी के सामने एक पत्थर की चट्टान पर बैठे थे। उन्हें देखते ही भरत भैया! भैया! कहते हुए बच्चों की तरह रोते दौड़े और रामचन्द्र के पैरों पर गिर पड़े। रामचन्द्र ने भरत को उठा कर छाती से लगा लिया। शत्रुघ्न ने भी आगे बढ़कर रामचन्द्र के चरणों पर सिर झुकाया। चारों भाई गले मिले। इतने में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी भी पहुंच गयीं। रामचन्द्र ने सब को परणाम किया। सीता जी ने भी सासों के पैरों को आंचल से छुआ। सासों ने उन्हें गले से

लगाया। किन्तु किसी के मुंह से कोई शब्द न निकलता था। सबके गले भरे हुए थे और आंखों में आंसू भरे हुए थे। वनवासियों का यह साधुओं कासा वेश देखकर सबका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। कैसी विवशता है ! कौशल्या सीता को देखकर अपने आप रो पड़ी। वह बहू, जिसे वह पान की तरह फेरा करती थीं, भिखारिनी बनी हुई खड़ी है। समझाने लगीं—बेटा, अब भी मेरा कहना मानो। यहां तुम्हें बड़ेबड़े कष्ट होंगे। इतने ही दिनों में सूरत बदल गयी है। बिल्कुल पहचानी नहीं जाती। मेरे साथ लौट चलो।

सीता ने कहा—अम्मा जी, जब मेरे स्वामी वनवन फिरते रहें तो मुझे अयोध्या ही नहीं, स्वर्ग में भी सुख नहीं मिलेगा। स्त्री का धर्म पुरुष के साथ रहकर उसके दुःखसुख में भाग लेना है। पुरुष को दुःख में छोड़कर जो स्त्री सुख की इच्छा करती है, वह अपने कर्तव्य से मुंह मोड़ती है। पानी के बिना नदी की जो दशा होती है, वही दशा पति के बिना स्त्री की होती है।

कौशल्या को सीता की बातों से परसन्नता भी हुई और दुःख भी हुआ। दुःख तो यह हुआ कि यह सुख और ऐश्वर्य में पली हुई लड़की यों विपत्ति में जीवन के दिन काट रही है। परसन्नता यह हुई कि उसके विचार इतने ऊंचे और पवित्र हैं। बोलों—धन्य हो बेटा, इसी को स्त्री का पातिवरत कहते हैं। यही स्त्री का धर्म है। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, और दूसरी स्त्रियों को भी तुम्हारे मार्ग पर चलने की पररेणा दे। ऐसी देवियां मनुष्य के लिये गौरव का विषय होती हैं। उन्हीं के नाम पर लोग आदर से सिर झुकाते हैं। उन्हीं के यश घरघर गाये जाते हैं।

चारों भाई जब गले मिल चुके, तो रामचन्द्र ने भरत से पूछा—कहो भैया, तुम काश्मीर से कब आये? पिताजी तो कुशल से हैं? तुम उनको छोड़कर व्यर्थ चले आये, वह अकेले बहुत घबरा रहे होंगे ?

भरत की आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे। भर्राई हुई आवाज में बोले—भाई साहब, पिताजी तो अब इस संसार में नहीं हैं। जिस दिन सुमन्त्र रथ लेकर वापस

हुए, उसी रात को वह परलोक सिधारे। मरते समय आप ही का नाम उनकी जिहवा पर था।

यह दुःखपूर्ण समाचार सुनते ही रामचन्द्र पछाड़ खाकर गिर पड़े। जब तनिक चेतना आयी तो रोने लगे। रोतेरोते हिचकियां बंध गयीं। हाय! पिता जी का अन्तिम दर्शन भी पराप्त न हुआ! अब रामचन्द्र को ज्ञात हुआ कि महाराज दशरथ को उनसे कितना परेम था। उनके वियोग में पराण त्याग दिये। बोले—यह मेरा दुर्भाग्य है कि अन्तिम समय उनके दर्शन न कर सका। जीवन भर इसका खेद रहेगा। अब हम उनकी सबसे बड़ी यही सेवा कर सकते हैं कि अपने कामों से उनकी आत्मा को परसन्न करें। महाराज अपनी परजा को कितना प्यार करते थे! तुम भी परजा का पालन करते रहना। सेना के परसन्न रहने ही से राज्य का अस्तित्व बना रहता है। तुम भी सैनिकों को परसन्न रखना। उनका वेतन ठीक समय पर देते रहना। न्याय के विषय में किसी के साथ लेशमात्र भी पक्षपात न करना हर एक काम में मन्त्रियों से अवश्य परामर्श लेना और उनके परामर्श पर आचरण करना। निर्धनों को धनियों के अत्याचार से बचाना। किसानों के साथ कभी सख्ती न करना। खेती सिंचाई के लिए कुएं, नहरें, ताल बनवाना। लड़कों की शिक्षा की ओर से असावधान न होना। और राज्य के कर्मचारियों की सख्ती से निगरानी करते रहना अन्यथा ये लोग परजा को नष्ट कर देंगे।

भरत ने कहा—भाई साहब! मैं यह बातें क्या जानूं। मैं तो आपकी सेवा में इसीलिए उपस्थित हुआ हूं कि आपको अयोध्या ले चलूं। अब तो हमारे पिता भी आप ही हैं। आप हमें जो आज्ञा देंगे, हम उसे बजा लायेंगे। हमारी आपसे

यही विनती है, इसे स्वीकार कीजिये। जब से आप आये हैं, अयोध्या में वह श्री ही न रही। चारों ओर मृत्यु कीसी नीरवता है। लोग आपको याद करके रोया करते हैं। अब तक मैं सबको यह आश्वासन देता रहा हूँ कि रामचन्द्र शीघ्र वापस आयेंगे। यदि आप न लौटेंगे, तो राज्य में कुहराम मच जायगा और सारा दोष और कलंक मेरे सिर पर रखा जायगा।

रामचन्द्र ने उत्तर दिया—भैया, जिन वचनों को पूरा करने के लिए पिताजी ने अपना पराण तक दे दिया, उसे पूरा करना मेरा धर्म है। उन्हें अपना वचन अपने पराण से भी अधिक पिरय था। इस आज्ञा का पालन मैं न करूँ, तो संसार में कौनसा मुंह दिखाऊंगा। तुम्हें भी उनकी आज्ञा मानकर राज्य करना चाहिये। मैं चौदह वर्ष व्यतीत होने के बाद ही अयोध्या में पैर रखूंगा।

भरत ने बहुत परार्थनाविनती की। गुरु वशिष्ठ और परतिष्ठित व्यक्तियों ने रामचन्द्र को खूब समझाया, किन्तु वह अयोध्या चलने पर किसी परकार सहमत न हुए। तब भरत ने रोकर कहा—भैया, यदि आपका यही निर्णय है, तो विवश होकर हमको भी मानना ही पड़ेगा। किन्तु आप मुझे अपनी खड़ाऊं दे दीजिये। आज से यह खड़ाऊं ही राजसिंहासन पर विराजेगी। हम सब आपके चाकर होंगे। जब तक आप लौटकर न आयेंगे, अभागा भरत भी आप ही के समान साधुओं कासा जीवन व्यतीत करेगा। किन्तु चौदह वर्ष बीत जाने पर भी आप न आये, तो मैं आग में जल मरूंगा।

यह कहकर भरत ने रामचन्द्र के खड़ाऊं को सिर पर रखा और बिदा हुए। रामचन्द्र ने कौशल्या और सुमित्रा के पैरों पर सिर रखा और उन्हें बहुत ाढ़स देकर बिदा किया। कैकेयी लज्जा से सिर झुकाये खड़ी थी। रामचन्द्र जब उसके चरणों पर झुके, तो वह फूटफूटकर रोने लगी। रामचन्द्र की सज्जनता और निर्मलहृदयता ने सिद्ध कर दिया कि राम पर उसका सन्देह अनुचित था।

जब सब लोग नन्दिगराम में पहुंचे, तो भरत ने मंत्रियों से कहा—आप लोग अयोध्या जायें, मैं चौदह वर्ष तक इसी परकार इस गांव में रहूंगा। राजा रामचन्द्र के सिंहासन पर बैठकर अपना परलोक न बिगाड़ूंगा। जब आपको मुझसे किसी सम्बन्ध में परामर्श करने की आवश्यकता हो मेरे पास चले आइयेगा।

भरत की यह सज्जनता और उदारता देखकर लोग आश्चर्य में आ गये। ऐसा कौन होगा, जो मिलते हुए राज्य को यों ठुकराकर अलग हो जाय! लोगों ने बहुत चाहा कि भरत अयोध्या चलकर राज करें, किन्तु भरत ने वहां जाने से निश्चित असहमति परकट कर दी। एक कवि ने ठीक कहा है कि भरतजैसा सज्जन पुत्र उत्पन्न करके कैकेयी ने अपने सारे दोषों पर धूल डाल दी।

आखिर सब रानियां शत्रुघ्न और अयोध्या के निवासी, भरत को वहीं छोड़कर अयोध्या चले आये। शत्रुघ्न मन्त्रियों की सहायता से राजकार्य संभालते थे और भरत नन्दिगराम में बैठे हुए उनकी निगरानी करते रहते थे। इस परकार चौदह वर्ष बीत गये।

दंडकवन

भरत के चले आने के बाद रामचन्द्र ने भी चित्रकूट से चले जाने का निश्चय कर लिया! उन्हें विचार हुआ कि अयोध्या के निवासी वहां बराबर आतेजाते रहेंगे और उनके आनेजाने से यहां के ऋषियों को कष्ट होगा। तीनों

आदमी घूमते हुए अत्रि मुनि के पास पहुंचे। अत्रि ईश्वरपराप्त एक वृद्ध थे। उनकी पत्नी अनुसूया भी बड़ी बुद्धिमती स्त्री थीं। उन्होंने सीताजी को स्त्रियों के कर्तव्य समझाये और बड़ा सत्कार किया। तीनों आदमी यहां कई महीने रहकर दंडकवन की ओर चले। इस वन में अच्छे-अच्छे ऋषि रहते थे। रामचन्द्र उनके दर्शन करना चाहते थे।

दंडकवन में विराध नामक एक बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से सारा नगर उजाड़ हो गया था। उसकी सूरत बहुत डरावनी थी और डील पहाड़ कासा था। वह रातदिन मदिरा पीकर बेहोश पड़ा रहता था। युद्ध की कला में वह इतना दक्ष था कि साधारण अस्त्रों से उसे मारना असम्भव था। राम, लक्ष्मण और सीता इस वन में थोड़ी ही दूर गये थे कि विराध की दृष्टि उन पर पड़ी। उसे सन्देह हुआ कि यह लोग अवश्य किसी स्त्री को भगाकर लाये हैं अन्यथा दो पुरुषों के बीच में एक स्त्री क्यों होती। फिर यह दोनों आदमी साधुओं के वेश में होकर भी हाथ में धनुष और बाण लिये हुए हैं। निकट आकर बोला—तुम दोनों आदमी मुझे दुराचारी परतीत होते हो। तुमने यात्रियों को लूटने के लिए ही साधुओं का वेश धारण किया है। अब कुशल इसी में है कि तुम दोनों इस स्त्री को मुझे दे दो और यहां से भाग जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूंगा।

रामचन्द्र ने कहा—हम दोनों कोशल के महाराज दशरथ के पुत्र हैं और यह हमारी पत्नी है। तुमने यदि फिर इस परकार धृष्टता से बात की, तो मैं तुम्हें जीवित न छोड़ूंगा।

विराध ने हंसकर कहा—तुम जैसे दो क्या सौपचास भी मेरे सामने आ जायं, तो मार डालूं। संभल जाओ, अब मैं वार करता हूं।

रामचन्द्र ने कई बाण चलाये; पर विराध के शरीर पर उसका कोई परभाव न हुआ। तब तो रामचन्द्र बहुत घबराये। शेर भी उनका वाण खाकर गिर पड़ते थे। किन्तु इस राक्षस पर उनका तनिक भी परभाव न हुआ। यह घटना उनकी समझ में न आयी तब दोनों भाइयों ने तलवार निकाली और विराध पर टूट पड़े। किन्तु तलवार के घावों का भी उस पर कुछ परभाव न हुआ। उसने ऐसी तपस्या की थी कि उसका शरीर लोहे के समान कड़ा और ठोस हो गया था। कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा तलवार के घाव खाता रहा। तब एकाएक जोर से गरजा और दोनों भाइयों को कंधे पर लेकर भागा। सीताजी रौने लगीं। किन्तु राम और लक्ष्मण उसके कन्धों पर बैठकर भी तलवार चलाते रहे। यहां तक कि विराध की दोनों बांहें कटकर भूमि पर गिर पड़ीं। तब दोनों भाई भूमि पर कूद पड़े। और विराध भी थोड़ी देर में तड़पतड़प कर मर गया।

विराध का वध करके तीनों आदमी आगे बढ़े। उस समय में ऋषिगण संसार से मुंह मोड़कर वनों में तपस्या करते थे। वन के फल और कन्दमूल उनका भोजन और पेड़ों की छाल पोशाक थी। किसी झोंपड़ी में, या किसी पेड़ के नीचे वह एक मृगछाला बिछाकर पड़े रहते थे। धन और वैभव को वह लोग तिनके के समान तुच्छ समझते थे। संस्तो और सरलता ही उनका सबसे बड़ा धन था। वह बड़े-बड़े राजाओं की भी चिन्ता न करते थे। किसी के सामने हाथ न फैलाते थे। शारीरिक आकांक्षाओं के चक्कर में न पड़कर वे लोग अपना मन और मस्तिष्क बौद्धिक और धार्मिक बातों के सोचने में लगाते थे। उन वनों में बसने वाले और जंगली फल खाने वाले पुरुषों ने जो गरन्थ लिखे, उन्हें पृकर आज भी बड़े-बड़े विद्वानों की आंखें खुल जाती हैं। दंडकवन में किनते ही ऋषि रहते थे। तीनों आदमी एक-एक दो-दो महीने हर एक ऋषि की शरण में रहते और उनसे ज्ञान की बातें सीखते थे। इस परकार दंडकवन में घूमते हुए उन्हें कई वर्ष बीत गये। आखिर वे लोग अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुंचे। यह महात्मा और सब ऋषियों से बड़े समझे जाते थे। वह केवल ऋषि ही न थे युद्ध की कला में भी दक्ष थे। कई बड़े-बड़े राक्षसों का

वध कर चुके थे। रामचन्द्र को देखकर बहुत परसन्न हुए और कई महीने तक अपने यहां अतिथि रखा। जब रामचन्द्र यहां से चलने लगे तो अगस्त्य ऋषि ने उन्हें एक ऐसा अलौकिक तरकश दिया, जिसके तीर कभी समाप्त ही न होते थे।

रामचन्द्र ने पूछा—महाराज, आप तो इस वन से भली परकार परिचित होंगे। हमें कोई ऐसा स्थान बताइये, जहां हम लोग आराम से रहकर वनवास के शेष दिन पूरे कर लें।

अगस्त्य ने पंचवटी की बड़ी परशंसा की। यह स्थान नर्मदा नदी के किनारे स्थित था। यहां की जलवायु ऐसी अच्छी थी कि न जाड़े में कड़ा जाड़ा पड़ता था, न गरमी में कड़ी गरमी। पहाड़ियां बारहों मास हरियाली से लहराती रहती थीं। तीनों आदमियों ने इस स्थान पर जाकर रहने का निश्चय किया।

पंचवटी

कई दिन के बाद तीनों आदमी पंचवटी जा पहुंचे। परशंसा सुनी थी, उससे कहीं बकर पाया। नर्मदा के दोनों ओर ऊंचीऊंची पहाड़ियां फूलों से लदी हुई खड़ी थीं। नदी के निर्मल जल में हंस और बगुले तैरा करते थे। किनारे हिरनों का समूह पानी पीने आता था और खूब कुलेलें करता था। जंगल में मोर नाचा करते थे। वायु इतनी स्वच्छ और स्फूर्तिदायक थी कि रोगी भी स्वस्थ हो जाता था। यह स्थान तीनों आदमियों को इतना पसन्द आया कि उन्होंने एक झोंपड़ा बनाया और सुख से रहने लगे। दिन को पहाड़ियों की सैर करते, परकृति के हृदयग्राहक दृश्यों का आनन्द उठाते, चिड़ियों के गाने सुनते, और जंगली फल खाकर कुटी में सो रहते। इस परकार कई महीने बीत गये।

पंचवटी से थोड़ी ही दूर पर राक्षसों की एक बस्ती थी। उनके दो सरदार थे। एक का नाम था खर और दूसरे का दूषण। लंका के राजा रावण की एक बहन शूर्पणखा भी वहीं रहती थी। यह लोग लूटमारकर जीवन व्यतीत करते थे।

एक दिन रामचन्द्र और सीता पेड़ के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे थे कि उधर से शूर्पणखा निकली। इन दोनों आदमियों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि यह कौन लोग यहां आ गये! ऐसे सुन्दर मनुष्य उसने कभी न देखे थे। वह थी तो कालीकलूटी, अत्यन्त कुरूप, किन्तु अपने को परी समझती थी। इसलिए अब तक विवाह नहीं किया था, क्योंकि राक्षसों से विवाह करना उसे रुचिकर न था। रामचन्द्र को देखकर फूली न समायी। बहुत दिनों के बाद उसे अपने जोड़ का एक युवक दिखायी दिया। निकट आकर बोली—तुम लोग किस देश के आदमी हो? तुम जैसे आदमी तो मैंने कभी नहीं देखे।

रामचन्द्र ने कहा—हम लोग अयोध्या के रहने वाले हैं। हमारे पिताजी अयोध्या के राजा थे। आजकल हमारे भाई राज्य करते हैं।

शूर्पणखा—बस, तब तो सारी बात बन गयी। मैं भी राजा की लड़की हूं। मेरा भाई रावण लंका में राज्य करता है। बस हमारा तुम्हारा अच्छा जोड़ है। मैं तुम्हारे ही जैसा पति ढूंढ़ रही थी, तुम अच्छे मिले, अब मुझसे विवाह कर लो। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझजैसी सुन्दरी तुमसे विवाह करना चाहती है।

रामचन्द्र ने व्यंग्य से जवाब दिया—अवश्य मेरा सौभाग्य है। तुम्हारी जैसी परी तो इन्द्रलोक में भी न होगी। मेरा जी तो तुमसे विवाह करने के लिए बहुत व्याकुल है। किन्तु कठिनाई यह है कि मेरा विवाह हो चुका है और यह स्त्री मेरी पत्नी है। यह तुमसे झगड़ा करेगी। हां, मेरा छोटा भाई जो वह सामने बैठा हुआ है, यहां अकेला है। उसकी पत्नी साथ में नहीं है। वह चाहे तो तुमसे विवाह कर सकता है। तुम उसके पास जाओ तुम्हारा सौन्दर्य देखते ही वह मोहित हो जायगा। वही तुम्हारे योग्य भी है।

शूर्पणखा—इस स्त्री की तुम अधिक चिन्ता न करो। मैं इसे अभी मार डालूंगी। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मुझजैसी स्त्री फिर न पाओगे। मेरी और तुम्हारी जोड़ी ईश्वर ने अपने हाथ से बनायी है।

रामचन्द्र—नहीं, तुम भूल करती हो। मैं तो तुम्हारे योग्य हूं ही नहीं। भला कहां मैं और कहां तुम। तुम्हारे योग्य तो मेरा भाई है, जो वय में मुझसे छोटा है और मुझसे अधिक वीर है।

शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गयी और बोली—मैं एक आवश्यकतावश इधर आयी थी। तुम्हारे भाई रामचन्द्र की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी, तो वह मुझ पर आसक्त हो गये और मुझसे विवाह करने की इच्छा की। पर मैंने ऐसे पुरुष से विवाह करना पसन्द न किया, जिसकी पत्नी मौजूद है। मेरे योग्य तो तुम हो, तनिक मेरी ओर देखो, ऐसा कोयले कासा चमकता हुआ रंग तुमने और कहीं देखा है? मेरी नाक बिल्कुल चिलम कीसी है और होंठ कितनी सुन्दरता से नीचे लटके हुए हैं। तुम्हारा सौभाग्य है कि मेरा दिल तुम्हारे ऊपर आ गया। तुम मुझसे विवाह कर लो।

लक्ष्मण ने मुस्कराकर कहा—हां, इसमें तो सन्देह नहीं कि तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है और मैं हूं भी भाग्यवान कि मुझसे तुम विवाह करने को परस्तुत हो। पर मैं रामचन्द्र का छोटा भाई और चाकर हूं। तुम मेरी पत्नी हो जाओगी, तो तुम्हें सीता जी की सेवा करनी पड़ेगी। तुम रानी बनने योग्य हो, जाकर भाई साहब ही से कहो। वही तुमसे विवाह करेंगे।

शूर्पणखा फिर राम के पास गयी, किन्तु वहां फिर वही उत्तर मिला कि तुम्हारे योग्य लक्ष्मण हैं, उन्हीं के पास जाओ। इस परकार उसे दोनों बातों में टालते रहे। जब उसे विश्वास हो गया कि यहां मेरी कामना पूरी न होगी तो वह मुंह बनाबनाकर गालियां बकने लगी और सीताजी से लड़ाई करने पर सन्नद्ध हो गयी। उसकी यह दुष्टता देखकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया, उन्होंने शूर्पणखा की नाक काट ली और कानों का भी सफाया कर दिया।

अब क्या था शूर्पणखा ने वह हायवाय मचायी कि दुनिया सिर पर उठा ली। तीनों आदमियों को गालियां देती, रोतीपीटती वह खर और दूषण के पास पहुंची और अपने अपमान और अपरतिष्ठा की सारी कथा कह गयी। ‘भैया, दोनों भाई बड़े दुष्ट हैं। मुझे देखते ही दोनों मुझ पर बुरी दृष्टि डालने लगे और मुझसे विवाह करने के लिए जोर देने लगे। कभी बड़ा भाई अपनी ओर खींचता था, कभी छोटा भाई। जब मैं इस पर सहमत न हुई तो दोनों ने मेरे नाककान काट लिये। तुम्हारे रहते मेरी यह दुर्गति हुई। अब मैं किसके पास शिकायत लेकर जाऊं? जब तक उन दोनों के सिर मेरे सामने न आ जायेंगे, मेरे लिए अन्नजल निषिद्ध है।’

खर और दूषण यह हाल सुनकर क्रोध से पागल हो गये। उसी समय अपनी सेना को तैयार हो जाने का आदेश दिया। दमके-दम में चौदह हजार आदमी राम और लक्ष्मण को इस खलता का दण्ड देने चले। आगओगे नकटी शूर्पणखा रोती चली जा रही थी।

रामचन्द्र ने जब राक्षसों की यह सेना आते देखी, तो लक्ष्मण को सीताजी की रक्षा के लिए छोड़कर आप उनका सामना करने के लिए तैयार हो गये। राक्षसों ने आते ही तीरों की बौछार करनी परारंभ कर दी। किन्तु रामचन्द्र बाणों के सम्मुख उनकी क्या चलती। सबके-सब एक साथ तो तीर छोड़ ही न सकते थे। पहले पंक्ति के लोग तीन छोड़ते, रामचन्द्र एक ही तीर से उनके सब तीरों को काट देते थे। जिस परकार राइफल के सामने तोड़ेदार बन्दूक बेकाम है, उसी परकार रामचन्द्र के अग्निबाणों के सम्मुख राक्षसों के बाण बेकाम हो गये।

एकएक बार में सैकड़ों का सफाया होने लगा। यह देखकर राक्षसों का साहस टूट गया। सारी सेना तितरबितर हो गयी। संध्या होतेहोते वहां एक राक्षस भी न रहा। केवल मृत शरीर रणक्षेत्र में पड़े थे।

खर और दूषण ने जब देखा कि चौदह हजार राक्षसों की सेना बातकी-बात में नष्ट हो गयी, तो उन्हें विश्वास हो गया कि राम और लक्ष्मण बड़े वीर हैं। उन पर विजय पाना सरल नहीं। अपने पूरे बल से उन पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह विचार भी था कि यदि हम लोग इन दोनों आदमियों को न जीत सके तो हमारी कितनी बदनामी होगी। बड़े जोरशोर से तैयारियां करने लगे। रात भर में कई हजार सैनिकों की एक चुनी हुई सेना तैयार हो गयी। उनके पास मूसल, भाले, धनुषबाण, गदा, फरसे, तलवार, डंडे सभी परकार के अस्त्र थे। किन्तु सब पुराने ंग के। युद्ध की कला से भी वह अवगत न थे। बस, एक साथ दौड़ पड़ना जानते थे। सैनिकों का क्रम किस परकार होना चाहिए, इसका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान न था। सबसे बड़ी खराबी थी कि वे सब शराबी थे। शराब पीपीकर बहकते थे। किन्तु सच्ची वीरता उनमें नाम को भी न थी।

सबेरे रामचन्द्र जी उठे तो राक्षसों की सेना आते देखी। आज का युद्ध कल से अधिक भीषण होगा, यह उन्हें ज्ञात था। सीता जी को उन्होंने एक गुफा में छिपा दिया और दोनों आदमी पहाड़ के ऊपर चकर राक्षसों पर तीर चलाने लगे। उनके तीर ऊपर से बिजली की तरह गिरते थे और एक साथ सैकड़ों को धराशायी कर देते थे। खर और दूषण अपनी सेना को ललकारते थे, ब्रावा देते थे, किन्तु उन अचूक तीरों के सामने सेना के कलेजे दहल उठते थे। राम और लक्ष्मण पर उनके बाणों का लेशमात्र भी परभाव न होता था, क्योंकि दोनों भाई पहाड़ के ऊपर थे। वह इतने वेग से तीर चलाते थे कि ज्ञात होता था कि उनके हाथों में बिजली का वेग आ गया है। तीर कब तरकश से निकलता था, कब धनुष पर चढ़ता था, कब छूटता था यह किसी को दिखायी नहीं देता था। फिर अगस्त्य ऋषि का दिया हुआ तरकश भी तो था, जिसके तीर कभी समाप्त न होते थे। फल यह हुआ कि राक्षसों के पांव उखड़ गये। सेना में भगदड़ पड़ गयी। खर और दूषण ने बहुत चाहा कि आदमियों को रोकें पर उन्होंने एक भी न सुनी। सिर पर पांव रखकर भागे। अब केवल खर और दूषण मैदान में रह गये। यह दोनों साहसी और वीर थे। उन्होंने बड़ी देर तक राम और लक्ष्मण का सामना किया, किन्तु आखिर उनकी मौत भी आ ही गयी। दोनों मारे गये। अकेली शूर्पणखा अपने भाइयों की मृत्यु पर विलाप करने को बच रही।

हिरण का शिकार

शूर्पणखा के दो भाई तो मारे गये, किन्तु अभी दो और शेष थे, उनमें से एक लङ्का देश का राजा था। उस समय में दक्षिण में लंका से अधिक बलवान और बसा हुआ कोई राज्य न था। रावण भी राक्षस था, किन्तु बड़ा विद्वान्, शास्त्रों का पण्डित; उसके धन की कोई सीमा न थी। यहां तक कि कहा जाता है, लंका शहर का नगरकोट सोने का बना हुआ था। व्यापार का बाजार गर्म था। विद्या, कला और कौशल की खूब चर्चा थी और वहां की कारीगरी अनुपम थी। किन्तु जैसा परायः होता है, धन और साम्राज्य ने रावण को दंभी, अत्याचारी और दुष्ट बना दिया

था। विद्वान और गुणी होने पर भी वह बुरे से बुरा काम करने से भी न हिचकता था। शूर्पणखा रोतीपीटती उसके पास पहुंची और छाती पीटने लगी।

रावण ने उसकी यह बुरी दशा देखी तो आश्चर्य से बोला—क्या है शूर्पणखा, क्या बात है? तेरी यह दशा कैसी हुई ? यह तेरी नाक क्या हुई? इस परकार रो क्यों रही है?

शूर्पणखा ने आंसू पोंछकर कहा—भैया, मेरी हालत क्या पूछते हो ! मेरी जो दुर्गति हुई है, वह सातवें शत्रु की भी न हो। पंचवटी में दो तपस्वी अयोध्या से आकर ठहरे हुए हैं। दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं। एक का नाम राम है, दूसरे का लक्ष्मण। राम की पत्नी सीता भी उनके साथ हैं। उन लोगों ने मेरी नाक और कान काट लिये। जब खर और दूषण इसका दण्ड देने के लिए सेना लेकर गये तो सारी सेना का वध कर दिया। एक आदमी भी जीवित न बचा। भैया ! तुम्हारे जीते जी मेरी यह दशा !

राम और लक्ष्मण का नाम सुनकर रावण के होश उड़ गये। वह भी सीता स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था, और जिस धनुष को वह हिला भी न सका था, उसी को राम के हाथों टूटते देख चुका था। सीता का रूप भी वह देख चुका था। उसकी याद अभी तक उसको भूली न थी। मन में सोचने लगा, यदि उन भाइयों को किसी परकार मार सकूँ, तो सीता हाथ आ जाय। किन्तु इस विचार को छिपाकर बोला—हाय! तूने यह कैसा समाचार सुनाया! मेरे दोनों वीर भाई मारे गये ? एक राक्षस भी जीवित न बचा? वह दोनों लड़के आफत के परकाले मालूम होते हैं। किन्तु तू संस्तो कर, दोनों को इस परकार मारुंगा कि वह भी समझेंगे कि किसी से पाला पड़ा था। वह कितने ही वीर हों, रावण का एक संकेत उनका अंत कर देने के लिये पर्याप्त है। मेरे लिए यह डूब मरने की बात है कि मेरी बहन का इतना निरादर हो, मेरे भाई मारे जायं, और मैं बैठा रहूँ। आज ही उन्हें दण्ड देने की चिन्ता करता हूँ।

शूर्पणखा बोली—भैया ! दोनों बड़े दुष्ट हैं। मुझसे बलात विवाह करना चाहते थे। किन्तु भला मैं उन्हें कब विचार में लाती थी। जब मैं उन्हें दुत्कार कर चली, तो छोटे भाई ने यह शरारत की। भैया, इसका बदला केवल यही है कि दोनों भाई मारे जायं, पूरा बदला जभी होगा, जब सीताजी का भी वैसा ही अनादर और दुर्गति हो, जैसी उन्होंने मेरी की है। क्या कहूँ भैया, सीता कितनी सुन्दर है! बस, यही समझ लो कि चांद कासा मुखड़ा है। ईश्वर ने उसे तुम्हारे लिए बनाया है। राम उसके योग्य नहीं है। उससे अवश्य विवाह करना।

रावण ने बहन को सान्त्वना दी और उसी समय मारीच नामक राक्षस को बुलाकर कहा—अब अपना कुछ कौशल दिखाओ। बहुत दिनों से बैठेबैठे व्यर्थ का वेतन ले रहे हो। रामचन्द्र और लक्ष्मण पंचवटी में आये हुए हैं। दोनों ने शूर्पणखा की नाक काट ली है, खर और दूषण को मार डाला है और सारे राक्षसों को नष्ट कर दिया है। इन दोनों से इन कुकर्मों का बदला लेना है। बतलाओ, मेरी कुछ सहायता करोगे ?

मारीच वही राक्षस था, जो विश्वामित्र का यज्ञ अपवित्र करने गया था और रामचन्द्र का एक वाण खाकर भागा था। तब से वह यहीं पड़ा था। रामचन्द्र ने उसका पुराना वैमनस्य था। यह खबर सुनकर बागबाग हो गया। बोला—आपकी सहायता करने को तन और पराण से परस्तुत हूँ। अबकी उनसे विश्वासघात की लड़ाई लड़ूंगा और पुराना बैर चुकाऊंगा। ऐसा चकमा दूँ कि एक बूंद रक्त भी न गिरे और दोनों भाई मारे जायं।

रावण—बस, ऐसी कोई युक्ति सोचो कि सीता मेरे हाथ लग जाय। फिर दोनों भाइयों को मारना कौन कठिन काम रह जायगा।

मारीच—ऐसा तो न कहिये महाराज! वीरता में दोनों जोड़ नहीं रखते। मैं उनकी लड़कपन की वीरता देख चुका हूँ। दोनों एक सेना के लिए पयार्त्त हैं। अभी उनसे युद्ध करना उचित नहीं। मामला ब्रजायगा और सीता को कहीं छिपा देंगे। मैं ऐसी युक्ति बता दूंगा कि सीता आपके घर में आ जायं और दोनों भाइयों को खबर भी न हो। कुछ पता ही न चले कि कहां गयी। आखिर तलाश करतेकरते निराश होकर बैठे रहेंगे।

रावण का मुख खिल उठा। बोला—मित्र, परामर्श तो तुम बहुत उचित देते हो। यही मैं भी चाहता हूँ। यदि काम बिना लड़ाईझगड़े के हो जाय, तो क्या कहना। आयुपर्यन्त तुम्हारा कृतज्ञ रहूंगा। आज ही से तुम्हारी वृद्धि कर दूँ और पद भी ब्रा दूँ। भला बतलाओ, तो क्या युक्ति सोची है ?

मारीच—बतलाता तो हूँ; किन्तु राजन से बड़ा भारी पुरस्कार लूंगा। आप जानते ही हैं, सूरत बदलने में मैं कितना कुशल हूँ। ऐसे सुन्दर हिरन का भेष बना लूँ, जैसा किसी ने न देखा हो, गुलाबी रंग होगा, उस पर सुनहरे धब्बे, सारा शरीर हीरे के समान चमकता हुआ। बस, जाकर रामचन्द्र की कुटी के सामने कुचालें भरने लगूंगा। दोनों भाई देखते ही मुझे पकड़ने दौड़ेंगे। मैं भागूंगा, दोनों मेरा पीछा करेंगे। मैं दौड़ता हुआ उन्हें दूर भगा ले जाऊंगा। आप एक साधु का भेष बना लीजियेगा। जिस समय सीता अकेली रह जायं, आप जाकर उन्हें उठा लाइयेगा। थोड़ी दूर पर आपका रथ खड़ा रहेगा। सीता को रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दीजियेगा। राम जब आयेंगे तो सीता को न पाकर इधरउधर तलाश करेंगे, फिर निराश होकर किसी ओर चल देंगे। बोलिये, कैसी युक्ति है कि सांप भी मर जाय और लाठी न टूटे।

रावण ने मारीच की बहुत परशंसा की और दोनों सीता को हर लाने की तैयारियां करने लगे।

छल

तीसरे पहर का समय था। राम और सीता कुटी के सामने बैठे बातें कर रहे थे कि एकाएक अत्यन्त सुन्दर हिरन सामने कुलेलें करता हुआ दिखायी दिया। वह इतना सुन्दर, इतने मोहक रंग का था कि सीता उसे देखकर रीझ गयीं। ऐसा परतीत होता था कि इस हिरन के शरीर में हीरे जड़े हुए हैं। रामचन्द्र से बोलीं—देखिये, कैसा सुन्दर हिरन है !

लक्ष्मण को उस समय विचार आया कि हिरन इस रूपरंग का नहीं होता; अवश्य कोई न कोई छल है। किन्तु इस भय से कि रामचन्द्र शायद उन्हें शक्की समझें, मुंह से कुछ नहीं कहा। हां, दिल में मना रहे थे कि रामचन्द्र के दिल में भी यही विचार पैदा हो। रामचन्द्र ने हिरन को बड़ी उत्सुकता से देखकर कहा—हां, है तो बड़ा सुन्दर। मैंने ऐसा हिरन नहीं देखा।

सीता—इसको जीवित पकड़कर मुझे दे दीजिये। मैं इसे पालूंगी और इसे अयोध्या ले जाऊंगी। लोग इसे देखकर आश्चर्य में आ जायेंगे। देखिये, कैसा कुलाचें भर रहा है।

राम—जीवित पकड़ना तो तनिक कठिन काम है।

सीता—चाहती तो यही हूँ कि जीवित पकड़ा जाय, किन्तु मर भी गया, तो उसकी मृगछाला कितनी उत्तम श्रेणी की होगी!

रामचन्द्र धनुष और बाण लेकर चले, तो लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये और कुछ दूर जाकर बोले—भैया, आप व्यर्थ परेशान हो रहे हैं, यह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। हां, कहिये तो मैं शिकार कर लाऊं।

राम—इसीलिए तो मैंने तुमसे नहीं कहा। मैं जानता था कि तुम्हें क्रोध आ जायगा, तीर चला दोगे। तुम सीता के पास बैठो; वह अकेली हैं। मैं अभी इसे जीवित पकड़े लाता हूं।

यह कहते हुए रामचन्द्र हिरन के पीछे दौड़े, लक्ष्मण को और कुछ कहने का अवसर न मिला। विवश होकर सीताजी के पास लौट आये। इधर हिरन कभी रामचन्द्र के सामने आ जाता, कभी पत्तों की आड़ में हो जाता, कभी इतने समीप आ जाता कि मानो अब थक गया है; फिर एकाएक छलांग मारकर दूर निकल जाता। इस प्रकार भुलावे देता हुआ वह रामचन्द्र को बहुत दूर ले गया, यहां तक कि वह थक गये, और उन्हें विश्वास हो गया कि वह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। मारीच भागा तो जाता था, किन्तु लक्ष्मण के न आने से उसकी युक्ति सफल होती न दीखती थी। जब तक सीताजी अकेली न होंगी, रावण उन्हें हर कैसे सकेगा? यह सोचकर उसने कई बार जोर से चिल्लाकर कहा—हाय लक्ष्मण ! हाय सीता !

रामचन्द्र का कलेजा धड़क उठा। समझ गये कि मुझे धोखा हुआ। यह बनावटी हिरन है। अवश्य किसी राक्षस ने यह भेष बनाया है। वह इसीलिए लक्ष्मण का नाम लेकर पुकार रहा है कि लक्ष्मण भी दौड़ आयें और सीता अकेली रह जायें। यह विचार आते ही उन्होंने हिरन को जीवित पकड़ने का विचार छोड़ दिया। ऐसा निशाना मारा कि पहले ही वार में हिरन गिर पड़ा। किन्तु वह निर्दय मरने के पहले अपना काम पूरा कर चुका था। रामचन्द्र तो दौड़े हुए कुटी की ओर आ रहे थे कि कहीं लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले न आ रहे हों, उधर सीता जी ने जो 'हाय लक्ष्मण! हाय सीता!' की पुकार सुनी, तो उनका रक्त ठंडा हो गया। आंखों में अंधेरा छा गया। यह तो प्यारे राम की आवाज है। अवश्य शत्रु ने उन्हें धाया कर दिया है। रोकर लक्ष्मण से बोलीं—मुझे तो ऐसा भय होता है कि यह स्वामी की ही आवाज है। अवश्य उन पर कोई बड़ी विपत्ति आयी है, अन्यथा तुम्हें क्यों पुकारते? लपककर देखो तो क्या माजरा है ! मेरा तो कलेजा धकधक कर रहा है। दौड़ते ही जाओ। लक्ष्मण ने भी यह आवाज सुनी और समझ गये कि किसी राक्षस ने छल किया। ऐसी दशा में सीता को अकेली छोड़कर जाना वह कब सहन कर सकते। बोले—भाई साहब की ओर से आप निश्चिन्त रहें, जिसने चौदह हजार राक्षसों का अन्त कर दिया, उसे किसका भय हो सकता है? भैया हिरन को लिये आते ही होंगे। आपको अकेली छोड़कर मैं न जाऊंगा। भाई साहब ने इस विषय में खूब चेता दिया था। सीता ने क्रोध से कहा—मेरी तुम्हें क्यों इतनी चिन्ता सवार है! क्या मुझे कोई शेर या भेड़िया खाये जाता है? अवश्य स्वामी पर कोई विपत्ति आयी है। और तुम हाथ पर हाथ रखे बैठे हो। क्या यही भाई का परेम है, जिस पर तुम्हें इतना घमण्ड है ?

लक्ष्मण कुछ खिन्न होकर बोले—मैंने तो कभी भाई के परेम का घमण्ड नहीं किया। मैं हूं किस योग्य। मैं तो केवल उनकी सेवा करना चाहता हूं। उन्होंने चलतेचलते मुझे चेतावनी दी थी कि यहां से कहीं न जाना। इसलिए मुझे जाने में सोचविचार हो रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि भाई साहब का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। उनके धनुष और बाण के सम्मुख किसका साहस है, जो ठहर सके ! आप व्यर्थ इतना डर रही हैं।

सीताजी ने मुंह फेरकर कहा—मैं तुम्हारासा हृदय कहां से लाऊं, जो उनकी आवाज सुनकर भी निश्चिन्तता से बैठी रहूं? सच कहा है—न भाईसा दोस्त न भाईसा दुश्मन। मैं तुम्हें अपना सहायक और सच्चा रक्षक समझती थी।

किन्तु अब ज्ञात हुआ कि तुम भी कैकेयी से सधेबधे हो, या फिर तुम्हें यहां से जाते हुए भय हो रहा है कि कहीं किसी शत्रु से सामना न हो जाय। मैं तुम्हें न इतना कृतघ्न समझती थी और न इतना डरपोक।

यह ताना बाण के समान लक्ष्मण के हृदय में चुभ गया। उन्हें राम से सच्चा भ्रातृपरेम था और सीता जी को भी वह माता के समान समझते थे। वह रामचन्द्र के एक संकेत पर जान देने को तैयार रहते थे। जहां राम का पसीना गिरे, वहां अपना रक्त बहाने में भी उन्हें खेद न था। उन्हें भय था कि कहीं मेरी अनुपस्थिति में सीता जी पर कोई विपत्ति आ गयी, कोई राक्षस आकर उन्हें छेड़ने लगा तो मैं रामचन्द्र को क्या मुंह दिखाऊंगा। उस समय जब रामचन्द्र पूछेंगे कि तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध सीता को अकेली छोड़कर क्यों चले गये, तो मैं क्या जवाब दूंगा। किन्तु जब सीताजी ने उन्हें कृतघ्न, डरपोक और धोखेबाज़ बना दिया, तब उन्हें अब इसके सिवा कोई चारा न रहा कि राम की खोज में जायें। उन्होंने धनुष और बाण उठा लिया और दुःखित होकर बोले—भाभीजी! आपने इस समय जो जो बातें कहीं, उनकी मुझे आपसे आशा न थी। ईश्वर न करे, वह दिन आये, किन्तु अवसर आयेगा, तो मैं दिखा दूंगा कि भाई के लिए भाई कैसे जान देते हैं। मैं अब भी कहता हूं कि भैया किसी खतरे में नहीं, किन्तु चूंकि आपकी आज्ञा है; उसका पालन करता हूं। इसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर है।

सीता का हरा जाना

यह कहकर लक्ष्मण तो चल दिये। रावण ने जब देखा कि मैदान खाली है, तो उसने एक हाथ में चिमटा उठाया। दूसरे हाथ में कमण्डल लिया और 'नारायण, नारायण !' करता हुआ सीता जी की कुटी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सीताजी ने देखा कि एक जटाधारी महात्मा द्वार पर आये हैं, बाहर निकल आयी और महात्मा को परणाम करके बोलीं—कहिये महाराज, कहां से आना हुआ !

रावण ने आशीर्वाद देकर कहा—माता, साधुसन्तों को तीर्थयात्रा के अतिरिक्त क्या काम है। बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रहा हूं, यहां तुम्हारा आश्रम देखकर चला आया। किन्तु यह तो बतलाओ, तुम कौन हो और यहां कैसे आ पड़ी हो? तुम्हारी जैसी सुन्दरी किसी महाराजा के रनिवास में रहने योग्य है। तुम इस जंगल में कैसे आ गयीं? मैंने तुम्हारा जैसा सौंदर्य कहीं नहीं देखा।

सीता ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा—महाराज, हम लोग विपत्ति के मारे हुए हैं। मैं मिथिलापुरी के राजा जनक की पुत्री, और कोशल के महाराजा दशरथ की पुत्रवधू हूं। किन्तु भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है कि आज जंगलों की खाक छान रही हूं। धन्य भाग्य है कि आपके दर्शन हुए। आज यहीं विश्राम कीजिये। आज्ञा हो तो कुछ जलपान के लिए लाऊं।

रावण—तू बड़ी दयावान है माता ! ला, जो कुछ हो, खिला दे। ईश्वर तेरा कल्याण करे।

सीताजी ने एक पत्तल में कन्दमूल और कुछ फल रखे और रावण के सामने लायीं। रावण ने पत्तल ले लेने के लिए हाथ बाया, तो पत्तल के बदले सीता ही को गोद में उठाकर वह अपने रथ की ओर दौड़ा और एक क्षण में उन्हें रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दिया। सीताजी मारे भय के मूर्छित हो गयीं। जब चेतना जागी तो देखा कि मैं रथ पर बैठी हूं और वह महात्माजी रथ को उड़ाये चले जा रहे हैं। चिल्लाकर बोलीं—बाबाजी, तुम मुझे कहां लिये जा रहे हो, ईश्वर के लिए बतलाओ; तुम साधू के भेष में कौन हो !

रावण ने हंसकर कहा—बतला ही दूँ ? लंका का ऐश्वर्यशाली राजा रावण हूँ। तुम्हारी यह मोहिनी सूरत देखकर पागल हो रहा हूँ। अब तुम राम को भूल जाओ और उनकी जगह मुझी को पति समझो। तुम लंका के राजा के योग्य हो, भिखारी राम के योग्य नहीं।

सीता जी को मानो गोली लग गयी। आह ! मुझसे बड़ी भूल हुई कि लक्ष्मण को बलात राम के पास भेज दिया। वह शब्द भी इसी राक्षस का था। हाय ! लक्ष्मण अन्त तक मुझे छोड़कर जाना अस्वीकार करता रहा। किन्तु मैंने न माना। हाय ! क्या ज्ञात था कि भाग्य यों मेरे पीछे पड़ा हुआ है। दोनों भाई कुटी में जाकर मुझे न पायेंगे, तो उनकी क्या दशा होगी ?

यह सोचते हुए सीता जी ने चाहा कि रथ पर से कूद पड़ें। किन्तु रावण भी असावधान न था। तुरन्त उनका विचार ताड़ गया। तुरन्त उनका हाथ पकड़ लिया और बोला—रथ से कूदने का विचार न करो सीता! तनिक देर बाद हम लंका पहुँच जाते हैं, वहाँ तुम्हें सुख और ऐश्वर्य के ऐसे सामान मिलेंगे कि तुम उस वन के जीवन को भूल जाओगी। इस कुटी के बदले तुम्हें आसमान से बातें करता हुआ राजमहल मिलेगा, जिसका फर्श चांदी का है और दीवारें सोने की, जहाँ गुलाब और कस्तूरी की सुगन्ध आठों पहर उड़ा करती हैं; और एक भिखारी पति के बदले वह पति मिलेगा, जिसकी उपमा आज इस पृथ्वी पर नहीं, जिसके धन और परसिद्धि का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता, जिसके द्वार पर देवता भी सिर झुकाते हैं।

सीता ने भयानक होकर कहा—बस, जबान संभाल! कपटी राक्षस ! एक सती के साथ छल करते हुए लज्जा नहीं आती ? इस पर ऐसी डींगें मार रहा है ! अपना भला चाहता है तो रथ पर से उतार दे। अन्यथा याद रख—रामचन्द्र तेरा और तेरे सारे वंश का नामोनिशान मिटा देंगे। कोई तेरे नाम को रोने वाला भी न रह जायगा। लंका जनहीन हो जायगी। तेरे ऐश्वर्यशाली परासादों में गीदड़ अपने मान बनायेंगे और उल्लू बसेरा लेंगे। तू अभी राम और लक्ष्मण के क्रोध को नहीं जानता। खर और दूषण तेरे ही भाई थे, जिनकी चौदह हजार सेना दोनों भाइयों ने बातकी-बात में नष्ट कर दी। शूर्पणखा भी तेरी ही बहन थी जो अपना सम्मान हथेली पर लिये फिरती है। तुझे लाज भी नहीं आती ! अपनी जान का दुश्मन न बन। अपने और अपने वंश पर दया कर। मुझे जाने दे।

रावण ने हंसकर कहा—उसी शूर्पणखा के निरादर और खर दूषण के रक्त का बदला ही लेने के लिए मैं तुम्हें लिये जा रहा हूँ। तुम्हें याद न होगा, मैं भी तुम्हारे स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था; किन्तु एक छोटेसे धनुष को तोड़ना अपनी मयार्दा के विरुद्ध समझ लौट आया था। मैंने तुम्हें उसी समय देखा था। उसी समय से तुम्हारी प्यारीप्यारी सूरत मेरे हृदय पर अंकित हो गयी है। मेरा सौभाग्य तुम्हें यहां लाया है। अब तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुम्हारे हित में भी यही अच्छा है कि राम को भूल जाओ और मेरे साथ सुख से जीवन का आनन्द उठाओ। मुझे तुमसे जितना परेम है, उसका तुम अनुमान नहीं कर सकतीं। मेरी प्यारी पत्नी बनकर तुम सारी लंका की रानी बन जाओगी। तुम्हें किसी बात की कमी न रहेगी। सारी लंका तुम्हारी सेवा करेगी और लंका का राजा तुम्हारे चरण धोधोकर पियेगा। इस वन में एक भिखारी के साथ रहकर क्यों अपना रूप और यौवन नष्ट कर रही हो ? मेरे ऊपर न सही, अपने ऊपर दया करो।

सीताजी ने जब देखा कि इस अत्याचारी पर क्रोध का कोई परभाव नहीं हुआ और यह रथ को भगाये ही लिये जाता है, तो अनुनयविनय करने लगीं—तुम इतने बड़े राजा होकर भी धर्म का लेशमात्र भी विचार नहीं करते! मैंने सुना है कि तुम बड़े विद्वान और शिवजी के भक्त हो और तुम्हारे पिता पुलस्त्य ऋषि थे। क्या तुमको मुझ पर तनिक

भी दया नहीं आती? यदि यह तुम्हारा विचार है कि मैं तुम्हारा राजपाट देखकर फूल उठूंगी, तो तुम्हारा विचार सर्वथा मिथ्या है। रामचन्द्र के साथ मेरा विवाह हुआ है। चाहे सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम से निकले, चाहे पर्वत अपने स्थान से हिल जायं, पर मैं धर्म के मार्ग से नहीं हट सकती। तुम व्यर्थ क्यों इतना बड़ा पाप अपने सिर लेते हो।

जब इस अनुनय का भी रावण पर कुछ परभाव न हुआ, तो सीता हाय राम ! हाय राम! कहकर जोरजोर से रोने लगीं। संयोग से उसी आसपास के परदेश में जटायु नाम का एक साधु रहता था। वह रामचन्द्र के साथ परायः बैठता था और उन पर सच्चा विश्वास रखता था। उसने जब सीता को रथ पर राम का नाम लेते सुना, तो उसे तुरन्त सन्देह हुआ कि कोई राक्षस सीता को लिए जाता है, अस्त्र लेकर रथ के सामने जाकर खड़ा हो गया और ललकार कर बोला—तू कौन है और सीताजी को कहां लिये जाता है ? तुरन्त रथ रोक ले, अन्यथा वह लड्डू मारुंगा कि भेजा निकल पड़ेगा !

रावण इस समय लड़ना तो न चाहता था, क्योंकि उसे राम और लक्ष्मण के आ जाने का भय था, किन्तु जब जटायु मार्ग में खड़ा हो गया, तो उसे विवश होकर रथ रोकना पड़ा। घोड़ों की बाग खींच ली और बोला—क्या शामत आयी है, जो मुझसे छेड़छाड़ करता है! मैं लंका का राजा रावण हूँ। मेरी वीरता के समाचार तूने सुने होंगे! अपना भला चाहता है तो रास्ते से हट जा।

जटायु—तू सीता को कहां लिये जाता है ?

रावण—राम ने मेरी बहन की परतिष्ठा नष्ट की है, उसी का यह बदला है।

जटायु—यदि अपमान का बदला लेना था, तो मर्दों की तरह सामने क्यों न आया? मालूम हुआ कि तू नीच और कपटी है। अभी सीता को रथ पर से उतार दे !

रावण बड़ा बली था। वह भला बेचारे जटायु की धमकियों को कब ध्यान में लाता था। लड़ने को परस्तुत हुआ। जटायु कमजोर था। किन्तु जान पर खेल गया। बड़ी देर तक रावण से लड़ता रहा। यहां तक कि उसका समस्त शरीर घावों से छलनी हो गया। तब वह बेहोश होकर गिर पड़ा और रावण ने फिर घोड़े ब्रा दिये।

उधर लक्ष्मण कुटिया से चले तो; किन्तु दिल में पछता रहे थे कि कहीं सीता पर कोई आफत आयी, तो मैं राम को मुंह दिखाने योग्य न रहूंगा। ज्योंज्यों आगे बढ़ते थे, उनकी हिम्मत जवाब देती जाती थी। एकाएक रामचन्द्र आते दिखायी दिये। लक्ष्मण ने आगे ब्रकर डरतेडरते पूछा—क्या आपने मुझे बुलाया था ?

राम ने इस बात का कोई उत्तर न देकर कहा—क्या तुम सीता को अकेली छोड़कर चले आये ? गजब किया। यह हिरन न था, मारीच राक्षस था। हमें धोखा देने के लिए उसने यह भेष बनाया, और तुम्हें धोखा देने के लिए मेरा नाम लेकर चिल्लाया था। क्या तुमने मेरी आवाज़ भी न पहचानी? मैंने तो तुम्हें आज्ञा दी थी कि सीता को अकेली न छोड़ना। मारीच की युक्ति काम कर गयी। अवश्य सीता पर कोई विपत्ति आयी। तुमने बुरा किया।

लक्ष्मण ने सिर झुकाकर कहा—भाभीजी ने मुझे बलात भेज दिया। मैं तो आता ही न था, पर जब वह ताने देने लगीं, तो क्या करता !

राम ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुमने उनके तानों पर ध्यान दिया, किन्तु मेरे आदेश का विचार न किया। मैं तो तुम्हें इतना बुद्धिहीन न समझता था। अच्छा चलो, देखें भाग्य में क्या लिखा है।

दोनों भाई लपके हुए अपनी कुटी पर आये। देखा तो सीता का कहीं पता नहीं। होश उड़ गये। विकल होकर इधरउधर चारों तरफ दौड़दौड़कर सीता को ढूँढ़ने लगे। उन पेड़ों के नीचे जहां परायः मोर नाचते थे, नदी के किनारे जहां हिरन कुलेलें करते थे, सब कहीं छान डाला, किन्तु कहीं चिह्न न मिला। लक्ष्मण तो कुटी के द्वार पर बैठकर जोरजोर से चीखें मारमारकर रोने लगे, किन्तु रामचन्द्र की दशा पागलों कीसी हो गयी।

सभी वृक्षों से पूछते, तुमने सीता को तो नहीं देखा? चिड़ियों के पीछे दौड़ते और पूछते, तुमने मेरी प्यारी सीता को देखा हो, तो बता दो, गुफाओं में जाकर चिल्लाते—कहां गयी? सीता कहां गयी, मुझ अभागे को छोड़कर कहां गयी? हवा के झोंकों से पूछते, तुमको भी मेरी सीता की कुछ खबर नहीं! सीता जी मुझे तीनों लोक से अधिक पियरी थीं, जिसके साथ यह वन भी मेरे लिए उपवन बना हुआ था, यह कुटी राजपरासाद को भी लज्जित करती थी, वह मेरी प्यारी सीता कहां चली गयी।

इस परकार व्याकुलता की दशा में वह ब्रते चले जाते थे। लक्ष्मण उनकी दशा देखकर और भी घबराये हुए थे। रामचन्द्र की दशा ऐसी थी मानो सीता के वियोग में जीवित न रह सकेंगे। लक्ष्मण रोते थे कि कैकेयी के सिर यदि वनवास का अभियोग लगा तो मेरे सिर सत्यानाश का अभियोग आयेगा। यदि रामचन्द्र को संभालने की चिन्ता न होती, तो सम्भवतः वे उसी समय अपने जीवन का अन्त कर देते। एकासक एक वृक्ष के नीचे जटायु को पड़े कराहते देखकर रामचन्द्र रुक गये, बोले—जटायु! तुम्हारी यह क्या दशा है? किस अत्याचारी ने तुम्हारी यह गति बना डाली ?

जटायु रामचन्द्र को देखकर बोला—आप आ गये? बस, इतनी ही कामना थी, अन्यथा अब तक पराण निकल गया होता। सीताजी को लङ्का का राक्षस रावण हर ले गया है। मैंने चाहा कि उनको उसके हाथ से छीन लूं। उसी के साथ लड़ने में मेरी यह दशा हो गयी। आह! बड़ी पीड़ा हो रही है। अब चला।

राम ने जटायु का सिर अपनी गोद में रख लिया। लक्ष्मण दौड़े कि पानी लाकर उसका मुंह तर करें, किन्तु इतने में जटायु के पराण निकल गये। इस वन में एक सहायक था, वह भी मर गया। राम को इसके मरने का बहुत खेद हुआ। बहुत देर तक उसके निष्पराण शरीर को गोद में लिये रोते रहे। ईश्वर से बारबार यही परार्थना करते थे कि इसे स्वर्ग में सबसे अच्छी जगह दीजियेगा, क्योंकि इस वीर ने एक दुखियारी की सहायता में पराण दिये हैं, और औचित्य की सहायता के लिए रावण जैसे बली पुरुष के सम्मुख जाने से भी न हिचका। यही मित्रता का धर्म है। यही मनुष्यता का धर्म है। वीर जटायु का नाम उस समय तक जीवित रहेगा, जब तक राम का नाम जीवित रहेगा।

लक्ष्मण ने इधरउधर से लकड़ी बटोरकर चिता तैयार की, रामचन्द्र ने मृतशरीर उस पर रखा, और वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए उसकी दाहक्रिया की। फिर वहां से आगे ब्रे। अब उन्हें सीता का पता मिल गया था, इस बात की व्याकुलता न थी कि सीता कहां गयीं। यह चिन्ता थी कि रावण से सीता को कैसे छीन लेना चाहिए। इस काम के लिए सहायकों की आवश्यकता थी। बहुत बड़ी सेना तैयार करनी पड़ेगी, लङ्का पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह चिन्ताएं पैदा हो गयी थीं। चलतेचलते सूरत डूब गया। राम को अब किसी बात की सुधि न थी, किन्तु लक्ष्मण को

यह विचार हो रहा था कि रात कहां काटी जाय। न कोई गांव दिखायी देता था, न किसी ऋषि का आश्रम। इसी चिंता में थे कि सामने वृक्षों के एक कुंज में एक झोंपड़ी दिखायी दी। दोनों आदमी उस झोंपड़ी की ओर चले। यह झोंपड़ी एक भीलनी की थी जिसका नाम शबरी था। उसे जो ज्ञात हुआ कि यह दोनों भाई अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, तो मारे खुशी के फूली न समायी, बोली—धन्य मेरे भाग्य कि आप मेरी झोंपड़ी तक आये। आपके चरणों से मेरी झोंपड़ी पवित्र हो गयी। रात भर यहीं विश्राम कीजिए। यह कहकर वह जंगल में गयी और ताजे फल तोड़ लायी। कुछ जंगली बेर थे, कुछ करौंदे, कुछ शरीफे। शबरी खूब रसीले, पके हुए फल ही चुन रही थी। इस भय से कि कोई खट्टा न निकल जाय, वह परायः फलों को कुतरकर उनका स्वाद ले लेती। भीलनी क्या जानती थी कि जूठी चीज खाने के योग्य नहीं रहती। इस परकार वह एक टोकरी फलों से भर लायी और खाने के लिए अनुरोध करने लगी। इस समय दुःख के मारे उनका जी कुछ खाने को तो न चाहता था, किन्तु शबरी का सत्कार स्वीकार था। यह कितने परेम से जंगल से फल लायी है, इसका विचार तो करना ही पड़ेगा। जब फल खाने आरम्भ किये तो कोईकोई कुतरे हुए दिखायी दिये, किन्तु दोनों भाइयों ने फलों को और भी परेम के साथ खाया, मानो वह जूठे थे, किन्तु उनमें परेम का रस भरा हुआ था। दोनों भाई बैठे फल खा रहे थे और शबरी खड़ी पंखा झल रही थी। उसे यह डर लगा हुआ था कि कहीं मेरे फल खट्टे या कच्चे न निकल जायं, तो ये लोग भूखे रह जायेंगे। शायद मुझे घुड़कियां भी दें। राजा हैं ही, क्या ठिकाना। किन्तु जब उन लोगों ने खूब बखानबखान कर फल खाये, तो उसे मानो स्वर्ग का ठेका मिल गया।

दोनों भाइयों ने रात वहीं व्यतीत की। परातः शबरी से विदा होकर आगे ब्रे।

उधर रावण रथ को भगाता हुआ पंपासर पहाड़ के निकट पहुंचा, तो सीताजी ने देखा कि पहाड़ पर कई बन्दरों कीसी सूरत वाले आदमी बैठे हुए हैं। सीताजी ने विचार किया कि रामचन्द्र मुझे ढूँढते हुए अवश्य इधर आवेंगे। इसलिए उन्होंने अपने कई आभूषण और चादर रथ के नीचे डाल दिये कि संभवतः इन लोगों की दृष्टि इन चीजों पर पड़ जाय और वह रामचन्द्र को मेरा पता बता सकें। आगे चलकर तुमको मालूम होगा कि सीताजी की इस कुशलता से रामचन्द्र को उनका पता लगाने में बड़ी सहायता मिली।

लंका पहुंचकर रावण ने सीताजी को अपने महल, बाग, खजाने, सेनायें सब दिखायीं। वह समझता था कि मेरे ऐश्वर्य और धन को देखकर सीताजी लालच में पड़ जायंगी। उसका महल कितना सुन्दर था, उपवन कितने नयनाभिराम थे, सेनायें कितनी असंख्य और नयेनये अस्त्रशस्त्रों से कितनी सजी हुई थीं, कोष कितना असीम था, उसमें कितने हीरेजवाहर भरे हुए थे! किन्तु सीताजी पर इस सेना का भी कुछ परभाव न हुआ। उन्हें विश्वास था कि रामचन्द्र के बाणों के सामने यह सेनायें कदापि न ठहर सकेंगी। जब रावण ने देखा कि सीताजी ने मेरे इस ठाटबाट की तिनके बराबर भी परवा न की तो बोला—तुम्हें अब भी मेरे बल का अनुमान नहीं हुआ? क्या तुम अब भी समझती हो कि रामचन्द्र तुम्हें मेरे हाथों से छुड़ा ले जायेंगे? इस विचार को मन से निकाल डालो।

सीता जी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—इस विचार को मैं हृदय से किसी परकार नहीं निकाल सकती। रामचन्द्र अवश्य मुझे ले जायेंगे और तुझे इस दुष्टता और नीचता का मजा भी चखायेंगे। तेरी सारी सेना, सारा धन, सारे अस्त्रशस्त्र धरे रह जायेंगे। उनके बाण मृत्यु के बाण हैं। तू उनसे न बच सकेगा। वह आन की आन में तेरी यह सोने की लड़का राख और काली कर देंगे। तेरे वंश में कोई दीपक जलाने वाला भी न रह जायगा। यदि तुझे अपने जीवन से कुछ परेम हो, तो मुझे उनके पास पहुंचा दे और उनके चरणों पर नमरता से गिरकर अपनी

धृष्टता की क्षमा मांग ले। वह बड़े दयालु हैं। तुझे क्षमा कर देंगे। किन्तु यदि तू अपनी दुष्टता से बाज न आया तो तेरा सत्यानाश हो जायगा।

रावण क्रोध से जल उठा। महल के समीप ही अशोकवाटिका नाम का एक उपवन था, रावण ने सीताजी को उसी में ठहरा दिया और कई राक्षसी स्त्रियों को इसलिए नियुक्त किया कि वह सीता को सतायें और हर परकार का कष्ट पहुंचाकर इन्हें उसकी ओर आकृष्ट करने के लिए विवश करें; अवसर पाकर उसकी परशंसा से भी सीताजी को आकर्षित करें। यह परबन्ध करके वह तो चला गया, किन्तु राक्षसी स्त्रियां थोड़े ही दिनों में सीताजी की नेकी और सज्जनता और पति का सच्चा परेम देखकर उनसे परेम करने लग गयीं और उन्हें कष्ट पहुंचाने के बदले हर तरह का आराम देने लगीं। वह सीताजी को आश्वासन भी देती रहती थीं। हां, जब रावण आ जाता तो उसे दिखाने के लिए सीता पर दोचार घुड़कियां जमा देती थीं।

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

रामचर्चा प्रेमचंद

[अनुक्रम](#)

अध्याय 4

[पीछे](#)
[आगे](#)**किष्किन्धाकांड****सीता जी की खोज**

राम और लक्ष्मण सीता की खोज में पर्वत और वनों की खाक छानते चले जाते थे कि सामने ऋष्यमूक पहाड़ दिखायी दिया। उसकी चोटी पर सुगरीव अपने कुछ निष्ठावान साथियों के साथ रहा करता था। यह मनुष्य किष्किन्धानगर के राजा बालि का छोटा भाई था। बालि ने एक बात पर असन्तुष्ट होकर उसे राज्य से निकाल दिया था और उसकी पत्नी तारा को छीन लिया था। सुगरीव भागकर इस पहाड़ पर चला आया और यद्यपि वह छिपकर रहता था, फिर भी उसे यह शंका बनी रहती थी कि कहीं बालि उसका पता न लगा ले और उसे मारने के लिए किसी को भेज न दे। उसने राम और लक्ष्मण को धनुष और बाण लिये जाते देखा, तो पराण सूख गये। विचार आया कि हो न हो बालि ने इन दोनों वीर युवकों को मुझे मारने के लिये भेजा है। अपने आज्ञाकारी मित्र हनुमान से बोला—भाई, मुझे तो इन दोनों आदमियों से भय लगता है। बालि ने इन्हें मुझे मारने के लिए भेजा है। अब बताओ, कहां जाकर छिपूं?

हनुमान सुगरीव के सच्चे हितैषी थे। इस निर्धनता में और सब साथियों ने सुगरीव से मुंह मोड़ लिया था। उसकी बात भी न पूछते थे, किन्तु हनुमान बड़े बुद्धिमान थे और जानते थे कि सच्चा मित्र वही है, जो संकट में साथ दे। अच्छे दिनों में तो शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। उन्होंने सुगरीव को समझाया—आप इतना डरते क्यों हैं। मुझे इन दोनों आदमियों के चेहरे से मालूम होता है कि यह बहुत सज्जन और दयालु हैं। मैं अभी उनके पास जाकर उनका हालचाल पूछता हूं। यह कहकर हनुमान ने एक बराहमण का भेष बनाया, माथे पर तिलक लगाया, जनेऊ पहना, पोथी बगल में दबायी और लाठी टेकते हुए रामचन्द्र के पास जाकर बोले—आप लोग यहां कहां से आ रहे हैं? मुझे तो ऐसा परतीत होता है कि आप लोग परदेशी हैं और सम्भवतः आपका कोई साथी खो गया है।

रामचन्द्र ने कहा—हां, देवताजी! आपका विचार ठीक है। हम लोग परदेशी हैं। दुर्भाग्य के मारे अयोध्या का राज्य छोड़कर यहां वनों में भटक रहे हैं। उस पर नयी विपत्ति यह पड़ी कि कोई मेरी पत्नी सीता को उठा ले गया। उसकी खोज में इधर आ निकले। देखें, अभी कहांकहां ठोकरें खानी पड़ती हैं।

हनुमान ने सहानुभूतिपूर्ण भाव से कहा—महाराज, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। आप अयोध्या के राजकुमार हैं, तो हम लोग आपके सेवक हैं। मेरे साथ पहाड़ पर चलिये। यहां राजा सुगरीव रहते हैं। उन्हें बालि ने किष्किन्धापुरी से निकाल दिया है। बड़े ही नेक और सज्जन पुरुष हैं, यदि उनसे आपकी मित्रता हो गयी, तो फिर बड़ी ही सरलता से आपका काम निकल जायगा। वह चारों तरफ अपने आदमी भेजकर पता लगायेंगे और ज्योंही पता मिला, अपनी विशाल सेना लेकर महारानी जी को छुड़ा लायेंगे। उन्हें आप अपना सेवक समझिये।

राम ने लक्ष्मण से कहा—मुझे तो यह आदमी हृदय से निष्कपट और सज्जन मालूम होता है। इसके साथ जाने में कोई हर्ज नहीं मालूम होता। कौन जाने, सुगरीव ही से हमारा काम निकले। चलो, तनिक सुगरीव से भी मिल लें।

दोनों भाई हनुमान के साथ पहाड़ पर पहुंचे। सुगरीव ने दौड़कर उनकी अभ्यर्थना की और लाकर अपने बराबर सिंहासन पर बैठाया।

हनुमान ने कहा—आज बड़ा शुभ दिन है कि अयोध्या के धर्मात्मा राजा राम किष्किन्धापुरी के राजा सुगरीव के अतिथि हुए हैं। आज दोनों मिलकर इतने बलवान हो जायेंगे कि कोई सामना न कर सकेगा। आपकी दशा एकसी है और आप दोनों को एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। राजा सुगरीव महारानी सीता की खोज करेंगे और महाराज रामचन्द्र बालि को मारकर सुगरीव को राजा बनायेंगे और रानी तारा को वापस दिला देंगे। इसलिए आप दोनों अग्नि को साक्षी बना कर परण कीजिये कि सदा एक दूसरे की सहायता करते रहेंगे, चाहे उसमें कितना ही संकट हो।

आग जलाई गयी। राम और सुगरीव उसके सामने बैठे और एक दूसरे की सहायता करने का निश्चय और परण किया। फिर बात होने लगी। सुगरीव ने पूछा—आपको ज्ञात है कि सीताजी को कौन उठा ले गया? यदि उसका नाम ज्ञात हो जाय, तो सम्भवतः मैं सीताजी का सरलता से पता लगा सकूँ।

राम ने कहा—यह तो जटायु से ज्ञात हो गया है, भाई ! वह लंका के राजा रावण की दुष्टता है। उसी ने हम लोगों को छलकर सीता को हर लिया और अपने रथ पर बिठाकर ले गया।

अब सुगरीव को उन आभूषणों की याद आयी, जो सीता जी ने रथ पर से नीचे फेंके थे। उसने उन आभूषणों को मंगवाकर रामचन्द्र के सामने रख दिया और बोला—आप इन आभूषणों को देखकर पहचानिये कि यह महारानी सीता के तो नहीं हैं? कुछ समय हुआ, एक दिन एक रथ इधर से जा रहा था। किसी स्त्री ने उस पर से यह गहने फेंक दिये थे। मुझे तो परतीत होता है, वह सीता जी ही थीं। रावण उन्हें लिये चला जाता था। जब कुछ वश न चला, तो उन्होंने यह आभूषण गिरा दिये कि शायद आप इधर आयें और हम लोग आपको उनका पता बता सकें।

आभूषणों को देखकर रामचन्द्र की आंखों से आंसू गिरने लगे। एक दिन वह था, कि यह गहने सीता जी के तन पर शोभा देते थे। आज यह इस परकार मारेमारे फिर रहे हैं। मारे दुःख के वह इन गहनों को देख न सके, मुंह फेरकर लक्ष्मण से कहा—भैया, तनिक देखो तो, यह तुम्हारी भाभी के आभूषण हैं।

लक्ष्मण ने कहा—भाई साहब, इस गले के हार और हाथों के कंगन के विषय में तो मैं कुछ निवेदन नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने कभी भाभी के चेहरे की ओर देखने का साहस नहीं किया। हां, पांव के बिछुर और पायजेब

भाभी ही के हैं। मैं उनके चरणों को छूते समय प्रतिदिन इन चीजों को देखता रहा हूँ। निस्संदेह यह चीजें देवी जी ही की हैं।

सुगरीव बोला—तब तो इसमें संदेह नहीं की दक्षिण कि ओर ही सीता का पता लगेगा। आप जितने शीघ्र मुझे राज्य दिला दें, उतने ही शीघ्र मैं आदिमियों को ऊपर भेजने का परबन्ध करूँ। किन्तु यह समझ लीजिये कि बालि अत्यन्त बलवान् पुरुष है और युद्ध के कौशल भी खूब जानता है। मुझे यह संतोष कैसे होगा कि आप उस पर विजय पा सकेंगे? वह एक बाण से तीन वृक्षों को एक ही साथ छेद डालता है।

पर्वत के नीचे सात वृक्ष एक ही पंक्ति में लगे हुए थे। रामचन्द्र ने बाण को धनुष पर लगाकर छोड़ा, तो वह सातों वृक्षों को पार करता हुआ फिर तरकश में आ गया। रामचन्द्र का यह कौशल देखकर सुगरीव को विश्वास हो गया कि यह बालि को मार सकेंगे। दूसरे दिन उसने हथियार साजे और बड़ी वीरता से बालि के सामने जाकर बोला— ओ अत्याचारी ! निकल आ ! आज मेरी और तेरी अन्तिम बार मुठभेड़ हो जाय। तूने मुझे अकरण ही राज्य से निकाल दिया है। आज तुझे उसका मजा चखाऊंगा।

बालि ने कई बार सुगरीव को पछाड़ दिया था। पर हर बार तारा के सिफारिश करने पर उसे छोड़ दिया था। यह ललकार सुनकर क्रोध से लाल हो गया और बोला—मालूम होता है, तेरा काल आ गया है। क्यों व्यर्थ अपनी जान का दुश्मन हुआ है? जा, चोरों की तरह पहाड़ों पर छिपकर बैठ। तेरे रक्त से क्या हाथ रंगूँ।

तारा ने बालि को अकेले में बुलाकर कहा—मैंने सुना है कि सुगरीव ने अयोध्या के राजा रामचन्द्र से मित्रता कर ली है। वह बड़े वीर हैं तुम उसका थोड़ाबहुत भाग देकर राजी कर लो। इस समय लड़ना उचित नहीं।

किन्तु बालि अपने बल के अभिमान में अन्धा हो रहा था। बोला—सुगरीव एक नहीं, सौ राजाओं को अपनी सहायता के लिये बुला लाये, मैं लेशमात्र परवाह नहीं करता। जब मैंने रावण की कुछ हकीकत नहीं समझी, तो रामचन्द्र की क्या हस्ती है। मैंने समझा दिया है, किन्तु वह मुझे लड़ने पर विवश करेगा तो उसका दुर्भाग्य। अबकी मार ही डालूंगा। सदैव के लिए झगड़े का अन्त कर दूंगा।

बालि जब बाहर आया तो देखा, सुगरीव अभी तक खड़ा ललकार रहा है। तब उससे सहन न हो सका। अपनी गदा उठा ली और सुगरीव पर झपटा। सुगरीव पीछे हटता हुआ बालि को उस स्थान तक लाया, जहां रामचन्द्र धनुष बाण लिये घात में बैठे थे। उसे आशा थी कि अब रामचन्द्र बाण छोड़कर बालि का अन्त कर देंगे। किन्तु जब कोई बाण न आया, और बालि उस पर वार करता ही गया, तब तो सुगरीव जान लेकर भागा और पर्वत की एक गुफा में छिप गया। बालि ने भागे हुए शत्रु का पीछा करना अपनी मयार्दा के विरुद्ध समझकर मूँछों पर ताव देते हुए घर का रास्ता लिया।

थोड़ी देर के पश्चात् जब रामचन्द्र सुगरीव के पास आये, तो वह बिगड़कर बोला— वाह साहब वाह! आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। मुझसे तो कहा कि मैं पेड़ की आड़ से बालि को मार गिराऊंगा, और तीर के नाम एक तिनका भी न छोड़ा! जब आप बालि से इतना डरते थे, तो मुझे लड़ने के लिए भेजा ही क्यों था? मैं तो बड़े आनन्द से यहां छिपा बैठा था। मैं न जानता था कि आप वचन से इतना मुंह मोड़ने वाले हैं। भाग न आता, तो उसने आज मुझे मार ही डाला था।

राम ने लज्जित होकर कहा—सुगरीव, मैं अपने वचन को भूला न था और न बालि से डर ही रहा था। बात यह थी कि तुम दोनों भाई सूरतसकल में इतना मिलतेजुलते हो कि मैं दूर से पहचान ही न सका कि तुम कौन हो और कौन बालि। डरता था कि मारुं तो बालि को और तीर लग जाय तुम्हें। बस, इतनीसी बात थी। कल तुम एक माला गले में पहनकर फिर उससे लड़ो। इस परकार मैं तुम्हें पहचान जाऊंगा और एक बाण में बालि का अन्त कर दूंगा।

दूसरे दिन सुगरीव ने फिर जाकर बालि को ललकारा—कल मैंने तुम्हें बड़ा भाई समझकर छोड़ दिया था, अन्यथा चाहता तो चटनी कर डालता। मुझे आशा थी कि तू मेरे इस व्यवहार से कुछ नरम होगा और मेरे आधे राज्य के साथ मेरी पत्नी को मुझे वापस कर देगा, किन्तु तूने मेरे व्यवहार का कुछ आदर न किया। इसलिए आज मैं फिर लड़ने आया हूँ। आज फैसला ही करके छोड़ूंगा।

बालि तुरन्त निकल आया। सुगरीव के डींग मारने पर आज उसे बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय कर लिया था कि आज इसे जीवित न छोड़ूंगा। दोनों फिर उसी मैदान में आकर लड़ने लगे। बालि ने तनिक देर में सुगरीव को दे पटका और उसकी छाती पर सवार होकर चाहता था कि उसका सिर काट ले कि एकाएक किसी ओर से एक ऐसा तीर आकर उसके सीने में लगा कि तुरन्त नीचे गिर पड़ा। सीने से रुधिर की धारा बहने लगी। उसके समझ में न आया कि यह तीर किसने मारा! उसके राज्य में तो कोई ऐसा पुरुष न था, जिसके तीर में इतना बल होता।

वह इसी असमंजस में पड़ा चिल्ला रहा था कि राम और लक्ष्मण धनुष और बाण लिये सामने आ खड़े हुए। बालि समझ गया कि रामचन्द्र ने ही उसे तीर मारा है। बोला—क्यों महाराज! मैंने तो सुना था कि तुम बड़े धर्मात्मा और वीर हो। क्या तुम्हारे देश में इसी को वीरता कहते हैं कि किसी आदमी पर छिपकर वार किया जाय! मैंने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था !

रामचन्द्र ने उत्तर दिया—मैंने तुम्हें इसलिए नहीं मारा कि तुम मेरे शत्रु हो, किन्तु इसलिए कि तुमने अपने वंश पर अत्याचार किया है और सुगरीव की पत्नी को अपने घर में रख लिया। ऐसे आदमी का बध करना पाप नहीं है। तुम्हें अपने सगे भाई के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए था। तुम समझते हो कि राजा स्वतन्त्र है, वह जो चाहे, कर सकता है। यह तुम्हारी भूल है। राजा उसी समय तक स्वतंत्र है, जब तक वह सज्जनता और न्याय के मार्ग पर चलता है। जब वह नेकी के रास्ते से हट जाय, तो परत्येक मनुष्य का, जो पर्याप्त बल रखता हो, उसे दण्ड देने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त सुगरीव मेरा मित्र है, और मित्र का शत्रु मेरा शत्रु है। मेरा कर्तव्य था कि मैं अपने मित्र की सहायता करता।

बालि को घातक घाव लगा था। जब उसे विश्वास हो गया कि अब मैं कुछ क्षणों का और मेहमान हूँ, तो उसने अपने पुत्र अंगद को बुलाकर सिपुर्द किया और बोला—सुगरीव! अब मैं इस संसार से बिदा हो रहा हूँ। इस अनाथ लड़के को अपना पुत्र समझना। यही तुमसे मेरी अन्तिम विनती है। मैंने जो कुछ किया, उसका फल पाया। तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं। जब दो भाई लड़ते हैं, तो विनाश के सिवाय और फल क्या हो सकता है! बुराइयों को भूल जाओ। मेरे दुर्व्यवहारों का बदला इस अनाथ लड़के से न लेना। इसे ताने न देना। मेरी दशा से पाठ लो और सत्य के रास्ते से चलो। यह कहतेकहते बालि के पराण निकल गये। सुगरीव किष्किंधापुरी का राजा हुआ और अंगद राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। तारा फिर सुगरीव की रानी हो गयी।

हनुमान

बरसात का मौसम आया। नदीनाले, झीलतालाब पानी से भर गये। मैदानों में हरियाली लहलहाने लगी। पहाड़ियों पर मोरों ने शोर मचाना परारम्भ किया। आकाश पर कालेकाले बादल मंडराने लगे। राम और लक्ष्मण ने सारी बरसात पहाड़ की गुफा में व्यतीत की। यहां तक कि बरसात गुजर गयी और जाड़ा आया। पहाड़ी नदियों की धारा धीमी पड़ गयी, कास के वृक्ष सफेद फूलों से लद गये। आकाश स्वच्छ और नीला हो गया। चांद का परकाश निखर गया। किन्तु सुगरीव ने अब तक सीता को ढूँढने का कोई परबन्ध न किया। न रामलक्ष्मण ही की कुछ सुध ली। एक समय तक विपत्तियां झेलने के पश्चात राज्य का सुख पाकर विलास में डूब गया। अपना वचन याद न रहा। अन्त में, रामचन्द्र ने परतीक्षा से तंग आकर एक दिन लक्ष्मण से कहा—देखते हो सुगरीव की कृतघ्नता! जब तक बालि न मरा था, तब तक तो रातदिन खुशामद किया करता था और जब राज मिल गया और किसी शत्रु का भय न रहा, तो हमारी ओर से बिल्कुल निश्चिंत हो गया। तुम तनिक जाकर उसे एक बार याद तो दिला दो। यदि मान जाय तो शुभ, अन्यथा जिस बाण से बालि को मारा, उसी बाण से सुगरीव का अन्त कर दूंगा।

लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा नगरी में परविष्ट हुए और सुगरीव के पास जाकर कहा—क्यों साहब ! सज्जनता और भलमंसी के यही अर्थ हैं कि जब तक अपना स्वार्थ था, तब तक तो रातदिन घेरे रहते थे और जब राज्य मिला तो सारे वायदे भूल बैठे? कुशल चाहते हो तो तुरन्त अपनी सेना को सीता की खोज में रवाना करो, अन्यथा फल अच्छा न होगा। जिन हाथों ने बालि का एक क्षण में अन्त कर दिया, उन्हें तुमको मारने में क्या देर लगती है। रास्ता देखतेदेखते हमारी आंखें थक गयीं, किन्तु तुम्हारी नींद न टूटी। तुम इतने शीलरहित और स्वार्थी हो? मैं तुम्हें एक मास का समय देता हूं। यदि इस अवधि के अन्दर सीताजी का कुछ पता न चल सका तो तुम्हारी कुशल नहीं।

सुगरीव को मारे लज्जा के सिर उठाना कठिन हो गया। लक्ष्मण से अपनी भूलों की क्षमा मांगी और बोला—वीर लक्ष्मण ! मैं अत्यन्त लज्जित हूं कि अब तक अपना वचन न पूरा कर सका। श्री रामचन्द्र ने मुझ पर जो एहसान किया, उसे मरते दम तक न भूलूंगा। अब तक मैं राज्य की परेशानियों में फंसा हुआ था। अब दिल और जान से सीताजी की खोज करूंगा। मुझे विश्वास है कि एक महीने में मैं उनका पता लगा दूंगा।

यह कहकर वह लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर चला आया जहां राम और लक्ष्मण रहते थे। और यहीं से सीताजी की तलाश करने का परबन्ध करने लगा। विश्वासी और परीक्षायुक्त आदमियों को चुनचुन कर देश के हरेक हिस्से में भेजना शुरू किया। कोई पंजाब और कंधार की तरफ गया, कोई बंगाल की ओर, कोई हिमालय की ओर। हनुमान उन आदमियों में सबसे वीर और अनुभवी थे। उन्हें उसने दक्षिण की ओर भेजा। क्योंकि अनुमान था कि रावण सीता को लेकर लंका की ओर गया होगा। हनुमान की मदद के लिये अंगद, जामवंत, नील, नल इत्यादि वीरों को तैनात किया। रामचन्द्र हनुमान से बोले—मुझे आशा है कि सफलता का सेहरा तुम्हारे ही सिर रहेगा।

हनुमान से कहा—यदि आपका यह आशीर्वाद है तो अवश्य सफल होऊंगा। आप मुझे कोई ऐसी निशानी दे दीजिये, जिसे दिखाकर मैं सीताजी को विश्वास दिला सकूं।

रामचन्द्र ने अपनी अंगूठी निकालकर हनुमान को दे दी और बोले—यदि सीता से तुम्हारी मुलाकात हो, तो उन्हें समझाकर कहना कि राम और लक्ष्मण तुम्हें बहुत शीघ्र छुड़ाने आयेंगे। जिस परकार इतने दिन काटे हैं, उसी परकार थोड़े दिन और सबर करें। उनको खूब ाढ़स देना कि शोक न करें। यह समय का उलटफेर है। न इस तरह

रहा, न उस तरह रहेगा। यदि ये विपत्तियां न झेलनी होतीं, तो हमारा वनवास ही क्यों होता। राज्य छोड़कर जंगलों में मारेमारे फिरते। हर हालत में ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये, हम सब उसी की इच्छा के पुतले हैं।

हनुमान अंगूठी लेकर अपने सहायकों के साथ चले। किन्तु कई दिन के बाद जब लंका का कुछ ठीक पता न चला और रसद का सामान सबका-सब खर्च हो गया, तो अंगद और उनके कई साथी वापस चलने को तैयार हो गये। अंगद उनका नेता बन बैठा। यद्यपि वह सुगरीव की आज्ञा का पालन कर रहा था, पर अभी तक अपने पिता का शोक उसके दिल में ताजा था। एक दिन उसने कहा—भाइयो, मैं तो अब आगे नहीं जा सकता। न हमारे पास रसद है, न यही खबर है कि अभी लंका कितनी दूर है। इस परकार घासपात खाकर हम लोग कितने दिन रहेंगे? मुझे तो ऐसा परतीत होता है कि चाचा सुगरीव ने हमें इधर इसलिए भेजा है कि हम लोग भूखप्यास से मर जायें और उसे मेरी ओर से कोई खटका न रहे। इसके सिवाय उसका और अभिपराय नहीं। आप तो वहां आनन्द से बैठे राज कर रहे हैं और हमें मरने के लिए इधर भेज दिया है। वही रामचन्द्र तो हैं, जिन्होंने मेरे पिता को छल से कत्ल किया। मैं क्यों उनकी पत्नी की खोज में जान दूं? मैं तो अब किष्किन्धानगर जाता हूं और आप लोगों को भी यही सलाह देता हूं।

और लोग तो अंगद के साथ लौटने पर लगभग परस्तुतसे हो गये; किन्तु हनुमान ने कहा—जिन लोगों को अपने वचन का ध्यान न हो वह लौट जायें। मैंने तो परण कर लिया है कि सीता जी का पता लगाये बिना न लौटूंगा, चाहे इस कोशिश में जान ही क्यों न देनी पड़े। पुरुषों की बात पराण के साथ है। वह जो वायदा करते हैं, उससे कभी पीछे नहीं हटते। हम रामचन्द्र के साथ अपने कर्तव्य का पालन न करके अपनी समस्त जाति को कलंकित नहीं कर सकते। आप लोग लक्ष्मण के क्रोध से अभिज्ञ नहीं, मैं उनका क्रोध देख चुका हूं। यदि आप लोग वायदा न पूरा कर सके तो समझ लीजिये कि किष्किन्धा का राज्य नष्ट हो जायगा।

हनुमान के समझाने का सबके ऊपर परभाव हुआ। अंगद ने देखा कि मैं अकेला ही रह जाता हूं; तो उसने भी विप्लव का विचार छोड़ दिया। एक बार फिर सबने मजबूत कमर बांधी और आगे ब्रे। बेचारे दिन भर इधरउधर भटकते और रात को किसी गुफा में पड़े रहते थे। सीता जी का कुछ पता न चलता था। यहां तक कि भटकते हुए एक महीने के करीब गुजर गया। राजा सुगरीव ने चलते समय कह दिया था कि यदि तुम लोग एक महीने के अन्दर सीता जी का पता लगाकर न लौटोगे तो मैं किसी को जीवित न छोड़ूंगा। और यहां यह हाल था कि सीता जी की कुछ खबर ही नहीं। सबके-सब जीवन से निराश हो गये। समझ गये कि इसी बहाने से मरना था। इस तरह लौटकर मारे जाने से तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं कहीं डूब मरें।

एक दिन विपत्ति के मारे यह बैठे सोच रहे थे कि किधर जायं कि उन्हें एक बूढ़ा साधु आता हुआ दिखायी दिया। बहुत दिनों के बाद इन लोगों को आदमी की सूरत दिखायी दी। सबने दौड़कर उसे घेर लिया और पूछने लगे—क्यों बाबा, तुमने कहीं रानी सीता को देखा है, कुछ बतला सकते हो, वह कहां हैं?

इस साधु का नाम सम्पाति था। वह उस जटायु का भाई था, जिसने सीताजी को रावण से छीन लेने की कोशिश में अपनी जान दे दी थी। दोनों भाई बहुत दिनों से अलगअलग रहते थे। बोला—हां भाई, सीता को लंका का राजा रावण अपने रथ पर ले गया है। कई सप्ताह हुए, मैंने सीता जी को रोते हुए रथ पर जाते देखा था। क्या करूं, बुढ़ापे से लाचार हूं, वरना रावण से अवश्य लड़ता। तब से इसी फिक्र में घूम रहा हूं, कि कोई मिल जाय तो उससे यह समाचार कह दूं। कौन जाने कब मृत्यु आ जाय। तुम लोग खूब मिले। अब मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

हनुमान ने पूछा—लंका किधर है और यहां से कितनी दूर है, बाबा?

सम्पाति बोला—दक्षिण की ओर चले जाओ। वहां तुम्हें एक समुद्र मिलेगा। समुद्र के उस पार लंका है। यहां से कोई सौ कोस होगा।

यह समाचार सुनकर उस दल के लोग बहुत परसन्न हुए। जीवन की कुछ आशा हुई। उसी समय चाल तेज कर दी और दो दिनों में रातदिन चलकर सौ कोस की मंजिल पूरी कर दी। अब समुद्र उनके सामने लहरें मार रहा था। चारों ओर पानी ही पानी। जहां तक निगाह जाती, पानी ही पानी नज़र आता था। इन बेचारों ने इतना चौड़ा नद कहां देखा था। कई आदमी तो मारे भय के कांप उठे। न कोई नाव थी, न कोई डोंगी, समुद्र में जायं तो कैसे जायं। किसी की हिम्मत न पड़ती थी। नल और नील अच्छे इंजीनियर थे, मगर समुद्र में तैरने योग्य नाव बनाने के लिए न कोई सामान था, न समय। इसके अलावा कोई युक्ति न थी कि उनमें से कोई समुद्र में तैरकर लंका में जाय और सीता जी की खबर लाये। अन्त में बू जामवन्त ने कहा—क्यों भाइयो, कब तक इस तरह समुद्र को सहमी हुई आंखों से देखते रहोगे ? तुममें कोई इतनी हिम्मत नहीं रखता कि समुद्र को तैर कर लंका तक जाय ?

अंगद ने कहा—मैं तैरकर जा तो सकता हूं, पर शायद लौटकर न आ सकूं।

नल ने कहा—मैं तैरकर जा सकता हूं, पर शायद लौटते वक्त आधी दूर आतओते बेदम हो जाऊं।

नील बोला—जा तो मैं भी सकता हूं और शायद यहां तक लौट भी आऊं। मगर लंका में सीता जी का पता लगा सकूं, इसका मुझे विश्वास नहीं।

इस तरह सबों ने अपनेअपने साहस और बल का अनुमान लगाया। किन्तु हनुमान जी अभी तक चुप बैठे थे। जामवन्त ने उनसे पूछा—तुम क्यों चुप हो, भगत जी? बोलते क्यों नहीं? कुछ तुमसे भी हो सकेगा ?

हनुमान ने कहा—मैं लंका तक तैरकर जा सकता हूं। तुम लोग यहीं बैठे हुए मेरी परीक्षा करते रहना।

जामवन्त ने हंसकर कहा—इतना साहस होने पर भी तुम अब तक चुप बैठे थे।

हनुमान ने उत्तर दिया—केवल इसलिए कि मैं औरों को अपना गौरव और यश ब्राने का मौका देना चाहता था। मैं बोल उठता तो शायद औरों को यह खेद होता कि हनुमान न होते तो मैं इस काम को पूरा करके राजा सुगरीव और राजा रामचन्द्र दोनों का प्यारा बन जाता। जब कोई तैयार न हुआ तो विवश होकर मुझे इस काम का बीड़ा उठाना पड़ा। आप लोग निश्चिन्त हो जायं। मुझे विश्वास है कि मैं बहुत शीघ्र सफल होकर वापस आऊंगा।

यह कहकर हनुमान जी समुद्र की ओर पुरुषोचित दृ पग उठाते हुए चले।

लंका में हनुमान

रासकुमारी से लंका तक तैरकर जाना सरल काम न था। इस पर दरियाई जानवरों से भी सामना करना पड़ा। किन्तु वीर हनुमान ने हिम्मत न हारी। संध्या होतेहोते वह उस पार जा पहुंचे। देखा कि लंका का नगर एक पहाड़ की चोटी पर बसा हुआ है। उसके महल आसमान से बातें कर रहे हैं। सड़कें चौड़ी और साफ हैं। उन पर तरहतरह की सवारियां दौड़ रही हैं। पगपग पर सज्जित सिपाही खड़े पहरा दे रहे हैं। जिधर देखिये, हीरेजवाहर के ेर लगे हैं।

शहर में एक भी गरीब आदमी नहीं दिखायी देता। किसीकिसी महल के कलश सोने के हैं, दीवारों पर ऐसी सुन्दर चित्रकारी की हुई है कि मालूम होता है कि सोने की हैं। ऐसा जनपूर्ण और श्रीपूर्ण नगर देखकर हनुमार चकरा गये। यहां सीताजी का पता लगाना लोहे के चने चबाना था। यह तो अब मालूम ही था कि सीता रावण के महल में होंगी। किन्तु महल में परवेश कैसे हो? मुख्य द्वार पर संतरियों का पहरा था। किसी से पूछते तो तुरन्त लोगों को उन पर सन्देह हो जाता। पकड़ लिये जाते। सोचने लगे, राजपरासाद के अन्दर कैसे घुसूं? एकाएक उन्हें एक बड़ा छतनार वृक्ष दिखायी दिया, जिसकी शाखाएं महल के अन्दर झुकी हुई थीं। हनुमान परसन्नता से उछल पड़े। पहाड़ों में तो वे पैदा हुए थे। बचपन ही से पेड़ों पर चढ़ना, उचकना, कूदना सीखा था। इतनी फुरती से पेड़ों पर चढ़ते थे कि बन्दर भी देखकर शरमा जाय। पहरेदारों की आंख बचाकर तुरन्त उस पेड़ पर चढ़ गये और पत्तियों में छिपे बैठे रहे। जब आधी रात हो गयी और चारों ओर सन्नाटा छा गया, रावण भी अपने महल में आराम करने चला गया तो वह धीरे से एक डाल पकड़कर महल के अन्दर कूद पड़े।

महल के अन्दर चमकदमक देखकर हनुमान की आंखों में चकाचौंध आ गयी। स्फटिक की पारदर्शी भूमि थी। उस पर फानूस की किरण पड़ती थी, तो वह दमदम करने लगती थी। हनुमान ने दबेपांव महलों में घूमना शुरू किया। रावण को देखा, एक सोने के पलंग पर पड़ा सो रहा है। उसके कमरे से मिले हुए मन्दोदरी और दूसरी रानियों के कमरे हैं। मन्दोदरी का सौंदर्य देखकर हनुमान को सन्देह हुआ कि कहीं यही सीताजी न हों। किन्तु विचार आया, सीताजी इस परकार इत्र और जवाहर से लदी हुई भला मीठी नींद के मजे ले सकती हैं? ऐसा संभव नहीं। यह सीताजी नहीं हो सकतीं। परत्येक महल में उन्होंने सुन्दर रानियों को मजे से सोते पाया। कोई कोना ऐसा न बचा, जिसे उन्होंने न देखा हो। पर सीताजी का कहीं निशान नहीं। वह रंजोगम से घुली हुई सीता कहीं दिखायी न दें। हनुमान को संदेह हुआ कि कहीं रावण ने सीताजी को मार तो नहीं डाला! जीवित होतीं, तो कहां जातीं ?

हनुमान सारी रात असमंजस में पड़े रहे, जब सवेरा होने लगा और कौए बोलने लगे, तो वह उस पेड़ की डाल से बाहर निकल आये। मगर अब उन्हें किसी ऐसी जगह की ज़रूरत थी, जहां वह दिन भर छिप सकें। कल जब वह वहां आये तो शाम हो गयी थी। अंधेरे में किसी ने उन्हें देखा नहीं। मगर सुबह को उनका लिवास और रूपरंग देखकर निश्चय ही लोग भड़कते और उन्हें पकड़ लेते। इसलिए हनुमान किसी ऐसी जगह की तलाश करने लगे जहां वह छिपकर बैठ सकें। कल से कुछ खाया न था। भूख भी लगी हुई थी। बाग के सिवा और मुत के फल कहां मिलते। यही सोचते चले जाते थे कि कुछ दूर पर एक घना बाग दिखायी दिया। अशोक के बड़ेबड़े पेड़ हरीहरी सुन्दर पत्तियों से लदे खड़े थे। हनुमान ने इसी बाग में भूख मिटाने और दिन काटने का निश्चय किया। बाग में पहुंचते ही एक पेड़ पर चढ़कर फल खाने लगे।

एकाएक कई स्त्रियों की आवाजें सुनायी देने लगीं। हनुमान ने इधर निगाह दौड़ायी तो देखा कि परम सुन्दरी स्त्री मैलेकुचैले कपड़े पहने, सिर के बाल खोले, उदास बैठी भूमि की ओर ताक रही है और कई राक्षस स्त्रियां उसके समीप बैठी हुई उसे समझा रही हैं। हनुमान उस सुन्दरी को देखकर समझ गये कि यही सीताजी हैं। उनका पीला चेहरा, आंसुओं से भीगी हुई आंखें और चिन्तित मुख देखकर विश्वास हो गया। उनके जी में आया कि चलकर इस देवी के चरणों पर सिर रख दूं और सारा हाल कह सुनाऊं। वह दरख्त से उतरना ही चाहते थे कि रावण को बाग में आते देखकर रुक गये। रावण घमण्ड से अकड़ता हुआ सीता के पास जाकर बोला—सीता, देखो, कैसा सुहावना समय है, फूलों की सुगन्ध से मस्त होकर हवा झूम रही है! चिड़ियां गा रही हैं, फूलों पर भौरें मंडरा रहे हैं। किन्तु तुम आज भी उसी परकार उदास और दुःखित बैठी हुई हो। तुम्हारे लिए जो मैंने बहुमूल्य जोड़े और आभूषण भेजे

थे, उनकी ओर तुमने आंख उठाकर भी नहीं देखा। न सिर में तेल डाला, न इत्र मला। इसका क्या कारण है ? क्या अब भी तुम्हें मेरी दशा पर दया न आयी।

सीताजी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—अत्याचारी राक्षस, क्यों मेरे घाव पर नमक छिड़क रहा है? मैं तुझसे हजार बार कह चुकी कि जब तक मेरी जान रहेगी, अपने पति के प्यारे चरणों का ध्यान करती रहूंगी। मेरे जीतेजी तेरे अपवित्र विचार कभी पूरे न होंगे। मैं तुझसे अब भी कहती हूँ कि यदि अपनी कुशल चाहता है तो मुझे रामचन्द्र के पास पहुंचा दे, और उनसे अपनी भूलों की क्षमा मांग ले। अन्यथा जिस समय उनकी सेना आ जायेगी, तुझे भागने की कहीं जगह न मिलेगी। उनके क्रोध की ज्वाला तुझे और तेरे सारे परिवार को जलाकर राख कर देगी। और खूब कान खोलकर सुन ले, कि वह अब यहां आया ही चाहते हैं।

रावण यह बातें सुनकर लाल हो गया और बोला—बस, जबान संभाल, मूर्ख स्त्री! मुझे मालूम हो गया कि तेरे साथ नरमी से काम न चलेगा। अगर तू एक निर्बल स्त्री होकर जिद कर सकती है, तो मैं लंका का महाराजा होकर क्या जिद नहीं कर सकता? जिसपुरुष के बल पर तुझे इतना अभिमान है, उसे मैं यों मसल डालूंगा, जैसे कोई कीड़े को मसलता है। तू मुझे सख्ती करने पर विवश कर रही है; तो मैं भी सख्ती करूंगा। बस, आज से एक मास का अवकाश तुझे और देता हूँ। अगर उस वक्त भी तेरी आंख न खुली तो फिर या तो तू रावण की रानी होगी या तो तेरी लाश चील और कौवे नोचनोचकर खायेंगे।

रावण चला गया, तो राक्षस स्त्रियों ने सीता जी को समझाना आरम्भ किया। तुम बड़ी नादान हो सीता, इतना बड़ा राजा तुम्हारी इतनी खुशामद करता है, फिर भी तुम कान नहीं देती। अगर वह जबरदस्ती करना चाहे तो आज ही तुम्हें रानी बना ले। मगर कितना नेक है कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहता। उसके साथ तुम्हारी बेपरवाही उचित नहीं। व्यर्थ रामचन्द्र के पीछे जान दे रही हो। लंका की रानी बनकर जीवन के सुख उठाओ। राम को भूल जाओ। वह अब यहां नहीं आ सकते और आ जायें तो राजा रावण का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

सीता जी ने क्रोधित होकर कहा—लाज नहीं आती? ऐसे पापी को जो दूसरे की स्त्रियों को बलात् उठा लाता है, तुम नेक और धर्मात्मा कहती हो? उससे बड़ा पापी तो संसार में न होगा !

हनुमान ऊपर बैठे हुए इन स्त्रियों की बातें सुन रहे थे। जब वह सब वहां से चली गयीं और सीताजी अकेली रह गयीं तो हनुमानजी ने ऊपर से रामचन्द्र की अंगूठी उनके सामने गिरा दी। सीताजी ने अंगूठी उठाकर देखी तो रामचन्द्र की थी। शोक और आश्चर्य से उनका कलेजा धड़कने लगा। शोक इस बात का हुआ कि कहीं रावण ने रामचन्द्र को मरवा न डाला हो। आश्चर्य इस बात का था कि रामचन्द्र की अंगूठी यहां कैसे आयी। वह अंगूठी को हाथ में लिये इसी सोच में बैठी हुई थी कि हनुमान पेड़ से उतरकर उनके सामने आये और उनके चरणों पर सिर झुका दिया।

सीता जी ने और भी आश्चर्य में आकर पूछा—तुम कौन हो? क्या यह अंगूठी तुम्हीं ने गिरायी है ? तुम्हारी सूरत से मालूम होता है कि तुम सज्जन और वीर हो। क्या बतला सकते हो कि तुम्हें अंगूठी कहां मिली ?

हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—माता जी! मैं श्री रामचन्द्र जी के पास से आ रहा हूँ। यह अंगूठी उन्हीं ने मुझे दी थी। मैं आपको देखकर समझ गया कि आप ही जानकी जी हैं। आपकी खोज में सैकड़ों सिपाही छूटे हुए हैं। मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए।

सीताजी का पीला चेहरा खिल गया। बोलीं—क्या सचमुच तुम मेरे स्वामीजी के पास से आ रहे हो? अभी तक वे मेरी याद कर रहे हैं ?

हनुमान—आपकी याद उन्हें सदैव सताया करती है। सोतेजागते आप ही के नाम की रट लगाया करते हैं। आपका पता अब तक न था। इस कारण से आपको छुड़ा न सकते थे। अब ज्योंही मैं पहुंचकर उन्हें आपका समाचार दूंगा, वह तुरन्त लंका पर आक्रमण करने की तैयारी करेंगे।

सीता जी ने चिंतित होकर पूछा—उनके पास इतनी बड़ी सेना है, जो रावण के बल का सामना कर सके ?

हनुमान ने उत्साह के साथ कहा—उनके पास जो सेना है, उसका एकएक सैनिक एकएक सेना का वध कर सकता है! मैं एक तुच्छ सिपाही हूँ; पर मैं दिखा दूंगा कि लंका की समस्त सेना किस परकार मुझसे हार मान लेती है।

सीता जी—रामचन्द्र को यह सेना कहां मिल गयी। मुझसे विस्तृत वर्णन करो, तब मुझे विश्वास आये।

हनुमान—वह सेना राजा सुगरीव की है, जो रामचन्द्र के मित्र और सेवक हैं। रामचन्द्र ने सुगरीव के भाई बालि को मारकर किष्किन्धा का राज्य सुगरीव को दिला दिया है। इसीलिए सुगरीव उन्हें अपना उपकारक समझते हैं। उन्होंने आपका पता लगाकर आपको छुड़ाने में रामचन्द्र की सहायता करने का परण कर लिया है। अब आपकी विपत्तियां बहुत शीघ्र अन्त हो जायंगी।

सीता जी ने रोकर कहा—हनुमान ! आज का दिन बड़ा शुभ है कि मुझे अपने स्वामी का समाचार मिला। तुमने यहां की सारी दशा देखी है। स्वामी से कहना, सीता की दशा बहुत दुःखद है; यदि आप उसे शीघ्र न छुड़ायेंगे तो वह जीवित न रहेंगी। अब तक केवल इसी आशा पर जीवित हैं, किन्तु दिनपरतिदिन निराशा से उसका हृदय निर्बल होता जा रहा है।

हनुमान ने सीता जी को बहुत आश्वासन दिया और चलने को तैयार हुए; किन्तु उसी समय विचार आया कि जिस परकार सीता जी के विश्वास के लिए रामचन्द्र की अंगूठी लाया था उसी परकार रामचन्द्र के विश्वास के लिए सीता जी की भी कोई निशानी ले चलना चाहिए! बोले—माता! यदि आप उचित समझें तो अपनी कोई निशानी दीजिए जिससे रामचन्द्र को विश्वास आ जाये कि मैंने आपके दर्शन पाये हैं।

सीता जी ने अपने सिर की वेणी उतारकर दे दी। हनुमान ने उसे कमर में बांध लिया और सीता जी को परणाम करके विदा हुए।

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

रामचर्चा
प्रेमचंद

[अनुक्रम](#)

अध्याय 5

[पीछे](#)
[आगे](#)**लंकादाह**

अशोकों के बाग से चलतेचलते हनुमान के जी में आया कि तनिक इन राक्षसों की वीरता की परीक्षा भी करता चलूं। देखूं, यह सब युद्ध की कला में कितने निपुण हैं। आखिर रामचन्द्र जी इन सबों का हाल पूछेंगे तो क्या बताऊंगा। यह सोचकर उन्होंने बाग के पेड़ों को उखाड़ना शुरू किया। तुम्हें आश्चर्य होगा कि उन्होंने वृक्ष कैसे उखाड़े होंगे। हम तो एक पौधा भी जड़ से नहीं उखाड़ सकते। किन्तु हनुमान जी अपने समय के अत्यंत बलवान पुरुष थे। जब उन्होंने हिन्दुस्तान से लंका तक समुद्र को तैरकर पार किया, तो छोटेमोटे पेड़ों का उखाड़ना क्या कठिन था। कई पेड़ उखाड़े। कई पेड़ों की शाखायें तोड़ डालीं, और फल तो इतने तोड़कर गिरा दिये कि उनका फर्शसा बिछ गया। बाग के रक्षकों ने यह हाल देखा तो एकत्रित होकर हनुमान को रोकने आये। किन्तु यह किसकी सुनते थे! उन सबों को डालियों से मारमारकर भगा दिया। कई आदमियों को जान से मार डाला। तब बाहर से और कितने ही सिपाही आकर हनुमान को पकड़ने लगे। मगर आपने उन्हें मार भगाया। धीरेधीरे राजा रावण के पास खबर पहुंची कि एक आदमी न जाने किधर से अशोकों के वन में घुस आया है और वन का सत्यानाश किये डालता है। कई मालियों और सैनिकों को मार भगाया है। किसी परकार नहीं मानता।

रावण ने क्रोध से दांत पीसकर कहा—तुम लोग उसे पकड़कर मेरे सामने लाओ।

रक्षक—हुजूर, वह इतना बलवान है कि कोई उसके पास जा ही नहीं सकता।

रावण—चुप रहो नालायको! बाहर का एक आदमी हमारे बाग में घुसकर यह तूफान मचा रहा है और तुम लोग उसे गिरतार नहीं कर सकते? बड़े शर्म की बात है।

यह कहकर रावण ने अपने लड़के अक्षयकुमार को हनुमान को गिरतार कर लाने के लिए भेजा। अक्षयकुमार कई सौ वीरों की सेना लेकर हनुमान से लड़ने चला। हनुमान उन्हें आते देख एक मोटासा वृक्ष उठा लिया और उन आदमियों पर टूट पड़े। पहले ही आक्रमण में कई आदमी घायल हो गये। कुछ भाग खड़े हुए। तब अक्षयकुमार ने ललकार कर कहा—यदि वीर है तो सामने आ जा ! यह क्या गंवारों की तरह सूखी टहनी लेकर घुमा रहा है।

हनुमान ताल ठोंककर अक्षयकुमार पर झपटे और उसकी टांग पकड़कर इतनी जोर से पटका कि वह वहीं ठंडा हो गया। और सब आदमी हुर्र हो गये।

रावण को जब अक्षयकुमार के मारे जाने का समाचार मिला तब उसके क्रोध की सीमा न रही। अभी तक उसने हनुमान को कोई साधारण सैनिक समझ रखा था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह कोई अत्यन्त वीर पुरुष है। अवश्य इसे रामचन्द्र ने यहां सीता का पता लगाने के लिए भेजा है। इस आदमी को जरूर दण्ड देना चाहिए। कड़ककर बोला—इस दरबार में इतने सूरमा मौजूद हैं, क्या किसी में भी इतना साहस नहीं कि इस दुष्ट को पकड़कर मेरे सामने लाये? लंका के इस राज में एक भी ऐसा आदमी नहीं ? मेरे हथियार लाओ, मैं स्वयं जाकर उसे गिरतार करूंगा। देखूं, उसमें कितना बल है !

सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। रावण का दूसरा पुत्र मेघनाद भी वहां बैठा हुआ था। अब तक उसने हनुमान का सामना करना अपनी मयादा के विरुद्ध समझा था, रावण को उदयत देखकर उठ खड़ा हुआ और बोला—उसके वध के लिए मैं क्या कम हूं, जो आप जा रहे हैं? मैं अभी जाकर उसे बांध लाता हूं। आप यहीं बैठें।

मेघनाद अत्यन्त वीर, साहसी और युद्ध की कला में अत्यन्त निपुण था। धनुषबाण हाथ में लेकर अशोकवाटिका में पहुंचा और हनुमान से बोला—क्यों रे पगले, क्या तेरे कुदिन आये हैं, जो यहां ऐसी अन्धेर मचा रहा है ? हम लोगों ने तुझे यात्री समझकर जाने दिया और तू शेर हो गया। लेकिन मालूम होता है, तेरे सिर पर मौत खेल रही है। आ जा; सामने ! बाग के मालियों और मेरे अल्पवयस्क भाई को मारकर शायद तुझे घमण्ड हो गया है। आ, तेरा घमण्ड तोड़ दूं।

हनुमान बल में मेघनाद से कम न थे; किन्तु उस समय उससे लड़ना अपने हेतु के विरुद्ध समझा। मेघनाद साधारण पुरुष न था। बराबर का मुकाबला था। सोचा, कहीं इसने मुझे मार डाला, तो रामचन्द्र के पास सीताजी का समाचार भी न ले जा सकूंगा। मेघनाद के सामने ताल ठोंककर खड़े तो हुए, पर उसे अपने ऊपर जानबूझकर विजय पा लेने दिया। मेघनाद ने समझा, मैंने इसे दबा लिया। तुरन्त हनुमान को रस्सियों से जकड़ दिया और मूंछों पर ताव देता हुआ रावण के सामने आकर बोला—महाराज, यह आपका बन्दी उपस्थित है।

रावण क्रोध से भरा तो बैठा ही था, हनुमान को देखते ही बेटे के खून का बदला लेने के लिए उसकी तलवार म्यान से निकल पड़ी, निकट था कि रस्सियों में जकड़े हुए हनुमान की गर्दन पर उसकी तलवार का वार गिरे कि रावण के भाई विभीषण ने खड़े होकर कहा—भाई साहब! पहले इससे पूछिये कि यह कौन है, और यहां किसलिए आया है। संभव है, बराहमण हो तो हमें बरहम हत्या का पाप लग जाय।

हनुमान ने कहा—मैं राजा सुगरीव का दूत हूं। रामचन्द्र जी ने मुझे सीता जी का पता लगाने के लिए भेजा है। मुझे यहां सीता जी के दर्शन हो गये। तुमने बहुत बुरा किया कि उन्हें यहां उठा लाये। अब तुम्हारी कुशल इसी में है कि सीता जी को रामचन्द्र जी के पास पहुंचा दो। अन्यथा तुम्हारे लिए बुरा होगा। तुमने राजा बालि का नाम सुना होगा। उसने तुम्हें एक बार नीचा भी दिखाया था। उसी राजा बालि को रामचन्द्र जी ने एक बाण से मार डाला। खरदूषण की मृत्यु का हाल तुमने सुना ही होगा। उनसे तुम किसी परकार जीत नहीं सकते।

यह सुनकर कि यह रामचन्द्र जी का दूत है, और सीता जी का पता लगाने के लिए आया है, रावण का खून खौलने लगा। उसने फिर तलवार उठायी; मगर विभीषण ने फिर उसे समझाया—महाराज ! राजदूतों को मारना

साम्राज्य की नीति के विरुद्ध है। आप इसे और जो दण्ड चाहे दें, किन्तु वध न करें। इससे आपकी बड़ी बदनामी होगी।

विभीषण बड़ा दयालु, सच्चा और ईमानदार आदमी था। उचित बात कहने में उसकी ज़बान कभी नहीं रुकती थी। वह रावण को कई बार समझा चुका था कि सीता जी को रामचन्द्र के पास भेज दीजिये। मगर रावण उनकी बातों की कब परवाह करता था। इस वक्त भी विभीषण की बात उसे बुरी लगी। किन्तु साम्राज्य के नियम को तोड़ने का उसे साहस न हुआ। दिल में ऐंठकर तलवार म्यान में रख ली और बोला—तू बड़ा भाग्यवान है कि इस समय मेरे हाथ से बच गया। तू यदि सुग्रीव का दूत न होता तो इसी समयतेरे टुकड़ेटुकड़े कर डालता। तुझ जैसे धृष्ट आदमी का यही दण्ड है। किन्तु मैं तुझे बिल्कुल बेदाग न छोड़ूंगा। ऐसा दण्ड दूंगा कि तू भी याद करे कि किसी से पाला पड़ा था।

रावण सोचने लगा, इसे ऐसा कौनसा दण्ड दिया जाय कि इसकी जान तो न निकले, पर यह भली परकार अपमानित और अपरतिष्ठित हो। इसके साथ ही सांसत भी ऐसी हो कि जीवनपर्यन्त न भूले। फिर इधर आने का साहस ही न हो। सोचतेसोचते उसे एक अनोखा हास्य सूझा। वह मारे खुशी के उछल पड़ा। इसे बन्दर बनाकर इसकी दुम में आग लगा दी जाय। विचित्र और अनोखा तमाशा होगा। राक्षसों ने ऐसा तमाशा कभी न देखा होगा। बड़ा आनन्द रहेगा। हज़ारों आदमी उनके पीछे 'लेनालेना' करके दौड़ेंगे और वह इधरउधर उचकता फिरेगा। तुरन्त मेघनाद को आज्ञा दी कि इस आदमी का मुंह रंग दो, इसके शरीर पर भूरेभूरे रोयें लगा दो और एक लम्बी दुम लगाकर अच्छा खासा लंगूर बना दो। उसकी दुम में लत्ते बांधकर तेल में भिगा दो और उसमें आग लगाकर छोड़ दो। शहर में दौड़ी पिटवा दो कि आज शाम को एक नया, अनोखा और आश्चर्य में डालने वाला तमाशा होगा। सब लोग अपनी छतों पर से तमाशा देखें।

यह आदेश पाते ही राक्षसों ने हनुमान को बन्दर बनाना शुरू कर दिया। कोई मुंह रंगता था, कोई शरीर पर रोयें चिपकाता था, कोई दुम लगाता था। दमके-दम में बन्दर का स्वांग बना कर खड़ा हो गया। खूब लम्बी दुम थी। फिर लोग चारों तरफ से लत्ते लालाकर उसमें बांधने लगे, इधर शहर में दौड़ी पिट गयी। राक्षस लोग जल्दीजल्दी शाम को खाना खा, अच्छेअच्छे कपड़े पहन अपनीअपनी छतों पर डट गये। रावण की सैकड़ों रानियां थीं। सबकी-सब गहनेकपड़ों से सज्जित होकर यह तमाशा देखने के लिए सबसे ऊंची छत पर जा बैठीं। इतने में शाम भी हो गयी। हनुमान की दुम पर तेल छिड़का जाने लगा। मनो तेल डाल दिया गया। जब दुम खूब तेल से तर हो गयी, तो एक आदमी ने उसमें आग लगा दी लपटें भड़क उठीं। चारों तरफ तालियां बजने लगीं। तमाशा शुरू हो गया।

हनुमान अपने इस अपमान और हंसी पर दिल में खूब कु रहे थे। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर उस दुष्ट ने मार डाला होता। दिल में कहा, अगर इस अपमान का बदला न लिया तो कुछ न किया, और वह भी इसी वक्त। ऐसा तमाशा दिखाऊं कि आयुपर्यन्त न भूले। सारे शहर की होली हो जाय। जब दुम में आग लग गयी तो वह एक पेड़ पर चढ़ गये। इस कला में उनका समान न था। पेड़ की एक शाखा राजमहल में झुकी हुई थी। उसी शाखा से कूदकर वह रनिवास में पहुंच गये और एक क्षण में सारा राजमहल जलने लगा। सब लोग छतों पर थे। कोई रोकने वाला न था। बहुमूल्य कपड़े और सजावट के सामान, फर्श, गद्दे, कालीन, परदे, पंखे, इसमें आग लगते क्या देर थी। हनुमान जिधर से अपनी जलती हुई दुम लेकर निकल जाते थे, उधर ही लपटें उठने लगती थीं।

राजमहल में आग लगाकर हनुमान बस्ती की तरफ झुके। छतों से छतें मिली हुई थीं। एक घर से दूसरे घर में कूद जाना कठिन न था। घण्टे भर में सारा शहर आग के परदे में ंक गया। चारों तरफ कुहराम मच गया। कोई अपना असबाब निकालता था, कोई पानी पानी चिल्लाता था। कितने ही आदमी जो नीचे न उतर सके, जलभुन गये। संयोग से उसी समय जोर की हवा चलने लगी, आग और भी भड़क उठी, मानो हवा अग्नि देवता की सहायता करने आयी है। ऐसा मालूम होता था कि आसमान से आग के तख्ते बरस रहे हैं।

शहर की होली बनाकर हनुमान समुद्र की तरफ भागे और पानी में कूदकर दुम की आग बुझायी। उन्होंने लंकावासियों को सचमुच विचित्र और अनोखा तमाशा दिखा दिया।

आक्रमण की तैयारी

हनुमान ने रातोंरात समुद्र को पार किया और अपने साथियों से जा मिले। यह बेचारे घबरा रहे थे कि न जाने हनुमान पर क्या विपत्ति आयी। अब तक नहीं लौटे। अब हम लोग सुगरीव को क्या मुंह दिखावेंगे। रामचन्द्र के सामने कैसे जायेंगे। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं डूब मरें। इतने ही में हनुमान जा पहुंचे। उन्हें देखते ही सबके-सब खुशी से उछलने लगे। दौड़दौड़कर उनसे गले मिले और पूछने लगे—कहो भाई, क्या कर आये ? सीता जी का कुछ पता चला? रावण से कुछ बातचीत हुई? हम लोग तो बहुत विकल थे।

हनुमान ने लंका का सारा हाल कह सुनाया। रावण के महल में जाना, अशोक के वन में सीता जी के दर्शन पाना, वाटिका को उजाड़ना, राक्षसों को मारना, मेघनाद के हाथों गिरतार होना, फिर लंका को जलाना, सारी बातें विस्तार से वर्णन कीं। सब ने हनुमान की वीरता और कौशल को सराहा और गाबजाकर सोये। मुंहअंधेरे किष्किंधापुरी को रवाना हुए। सैकड़ों कोसों की यात्रा थी। पर ये लोग अपनी सफलता पर इतने परसन्न थे कि न दिन को आराम करते, न रात को सोते। खानेपीने की किसी को सुध न थी। शीघर रामचन्द्र जी के पास पहुंचकर यह शुभ समाचार सुनाने के लिए अधीर हो रहे थे। आखिर कई दिनों के बाद किष्किन्धा पहाड़ दिखायी दिया। उसी के निकट राजा सुगरीव का एक बाग था। उसका नाम मधुवन था। उसमें बहुतसी शहद की मक्खियां पली थीं। सुगरीव को जब शहद की जरूरत पड़ती तो उसी बाग से लेता था।

जब यह लोग मधुवन के पास पहुंचे तो शहद के छत्ते को देखकर उनकी लार टपक पड़ी। बेचारों ने कई दिन से खाना नहीं खाया था। तुरन्त बाग में घुस गये और शहद पीना आरम्भ कर दिया। बाग के मालियों ने मना किया तो उन्हें खूब पीटा। शहद की लूट मच गयी। सुगरीव को जब समाचार मिला कि हनुमान, अंगद, जामवंत इत्यादि मधुवन में लूट मचाये हुए हैं, तो समझ गया कि यह लोग सफल होकर लौटे हैं। असफल लौटते तो यह शरारत कब सूझती। तुरन्त उनकी अगवानी करने चल खड़ा हुआ। इन लोगों ने उसे आते देखा तो और भी उधम मचाना शुरू किया।

सुगरीव ने हंसकर कहा—मालूम होता है, तुम लोगों ने कईकई दिन से मारे खुशी के खाना नहीं खाया है। आओ, तुम्हें गले लगा लूं।

जब सब लोग सुगरीव से गले मिल चुके, तो हनुमान ने लंका का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुगरीव खुशी से फूला न समाया। उसी समय उन लोगों को साथ लेकर रामचन्द्र के पास पहुंचा। रामचन्द्र भी उनकी भावभंगी से

ताड़ गये कि यह लोग सीता जी का पता लगा लाये। इधर कई दिनों से दोनों भाई बहुत निराश हो रहे थे। इन लोगों को देखकर आशा की खेती हरी हो गयी।

रामचन्द्र ने पूछा—कहो, क्या समाचार लाये? सीता जी कहां हैं? उनका क्या हाल है?

हनुमान ने विनोद करके कहा—महाराज, कुछ इनाम दिलवाइये तो कहूं।

राम—धन्यवाद के सिवा मेरे पास और क्या है जो तुम्हें दूं। जब तक जीवित रहूंगा, तुम्हारा उपकार मानूंगा।

हनुमान—वायदा कीजिए कि मुझे कभी अपने चरणों से विलग न कीजियेगा।

राम—वाह! यह तो मेरे ही लाभ की बात है। तुम जैसे निष्ठावान मित्र किसको सुलभ होते हैं! हम और तुम सदैव साथ रहें, इससे बकर मेरे लिए परसन्नता की बात और क्या हो सकती है? सीता जी क्या लंका में हैं?

हनुमान—हां महाराज, लंका के अत्याचारी राजा रावण ने उन्हें एक बाग में कैद कर रखा है और नाना परकार के कष्ट दे रहा है। कभी धमकाता है, कभी फुसलाता है; किन्तु वह उसकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं। जब मैंने आपकी अंगूठी दी, तो उसे कलेजे से लगा लिया और देर तक रोती रहीं। चलते समय मुझसे कहा कि पराणनाथ से कहना कि शीघ्र मुझे इस कैद से मुक्त करें, क्योंकि अब मुझमें अधिक सहने का बल नहीं। यह कहकर हनुमान ने सीता जी की वेणी रामचन्द्र के हाथ में रख दी।

रामचन्द्र ने इस वेणी को देखा तो बरबस उनकी आंखों से आंसू जारी हो गये। उसे बारबार चूमा और आंखों से लगाया। फिर बड़ी देर तक सीता जी ही के सम्बन्ध में बातें पूछते रहे। इन बातों से उनका जी ही न भरता था। वह कैसे कपड़े पहने हुए थीं? बहुत दुबली तो नहीं हो गयी हैं? बहुत रोया तो नहीं करतीं? हनुमान जी परत्येक बात का उत्तर देते जाते थे और मन में सोचते थे, इन स्त्री और पुरुष में कितना परेम है!

थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद रामचन्द्र ने सुगरीव से कहा—अब आक्रमण करने में देर न करनी चाहिये। तुम अपनी सेना को कब तैयार कर सकोगे?

सुगरीव ने कहा—महाराज? मेरी सेना तो पहले से ही तैयार है, केवल आपके आदेश की देर है।

राम—युद्ध के सिवा और कोई चारा नहीं है।

सुगरीव—ईश्वर ने चाहा तो हमारी जीत होगी।

राम—औचित्य की सदैव जीत होती है।

विभीषण

हनुमान के चले जाने के बाद राक्षसों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा, जिस सेना का एक सैनिक इतना बलवान और वीर है, उस सेना से भला कौन लड़ेगा! उस सेना का नायक कितना वीर होगा! एक आदमी ने आकर सारी लंका में हलचल मचा दी। यदि वीर मेघनाद स्वयं न जाता तो सम्भवतः हमारी सारी सेना मिलकर भी उसे न

पकड़ सकती। कितना गजब का चतुर आदमी था? दुम तो लगायी गयी उसकी हंसी उड़ाने के लिए, उसका बदला उसने यह दिया कि सारी लंका जला डाली; और कोई भी न पकड़ सका साफ निकल गया। अब रामचन्द्र की सेना दोचार दिन में लंका पर च आयेगी। राजा रावण और राजकुमार मेघनाद कितने ही वीर हो; किन्तु सेना का सामना नहीं कर सकते। इस एक स्त्री के लिये रावण सारे देश को नष्ट करना चाहता है। यदि वह रामचन्द्र के पास न भेज दी गयी और उनसे क्षमा न मांगी गयी, तो अवश्य लंका पर विपत्ति आयेगी।

दूसरे दिन शहर से खासखास आदमी रावण की सेवा में उपस्थित हुए और विनय की—महाराज! आपके राज्य में हम लोग अब तक बड़े आराम और चैन से रहे, अब हमें ऐसा भय हो रहा है कि इस देश पर कोई विपत्ति आने वाली है। हमारी आपसे यही परार्थना है कि आप सीता जी को रामचन्द्र के पास पहुंचा दें और देश को इस आने वाली विपत्ति से बचा लें।

रावण भी कल रात से इसी चिन्ता में पड़ा हुआ था; किन्तु अपनी परजा के सामने वह अपने दिल की कमजोरी को परकट न कर सका। उसे इसका धैर्य न था कि कोई उसके कार्यों पर आपत्ति करे। आपत्ति सुनते ही वह आपे से बाहर हो जाता था। उसका विचार था कि परजा का काम है राजा की आज्ञा मानना, न कि उसके कामों पर आपत्ति करना। क्रोध से बोला—तुम्हें ऐसी परार्थना करते हुए लाज नहीं आती? जिस आदमी ने मेरी बहन की मयार्दा धूल में मिलायी, उससे इसका बदला न लूं! ऐसा कभी नहीं हो सकता। रावण इतना शीलरहित और निर्लज्ज नहीं है। सीता मेरी है और मेरी रहेगी। तुम लोग जाकर अपना काम देखो। देश की रक्षा का मैं उत्तरदायी हूं। मैं तुमसे इस विषय में कोई परामर्श लेना नहीं चाहता।

यह फटकार सुनकर सब लोग चुप हो गये। सभी रावण के क्रोध से डरते थे, किन्तु विभीषण परजा का सच्चा मित्र था और न्यायोचित बात कहने में उनकी ज़बान कभी नहीं रुकती थी। बोला, महाराज! राजा का धर्म है कि जब परजा को पथभ्रष्ट होते देखे तो दण्ड दे, उसी परकार परजा का भी धर्म है कि जब राजा को पथभ्रष्ट होते देखे तो समझाये। आपको रामचन्द्र से अपमान का बदला लेना था तो उन पर आक्रमण करते। उस समय सारा देश आपका साथ देता। सीताजी को यहां लाकर कैद कर रखने में आपने अन्याय किया है और हमारा कर्तव्य है कि हम आपको समझायें। अगर आपने सीताजी को न वापस किया तो लंका पर अवश्य विपत्ति आयेगी।

रावण ने जब देखा कि उसका भाई भी परजा का पक्ष ले रहा है, तो और भी क्रुद्ध होकर बोला—विभीषण, तुम पूजा करने वाले, पोथीपुराण के कीड़े हो, राज्य के विषय में जबान खोलने का तुम्हें अधिकार नहीं। चुप रहो, मैं तुमसे अधिक योग्य हूं।

विभीषण—मैं आपको जता देना चाहता हूं कि इस लड़ाई में आपका साथ परजा कदापि न देगी।

रावण की आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। गरजकर बोला—मैं जो कुछ कहूं या करूं परजा को मानना पड़ेगा।

विभीषण ने जोश में आकर कहा—कदापि नहीं। पाप के काम में परजा आपका साथ नहीं दे सकती।

अब रावण से सहन न हो सका। उसने उठकर विभीषण को इतने जोर से लात मारी कि वह कई पग दूर जा गिरा; और फिर बोला—निकल जा मेरे राज्य से! इसी वक्त निकल जा! मैं तुझ जैसे देशद्रोही और धोखेबाज का मुंह नहीं देखना चाहता। तू मेरा भाई नहीं, मेरा शत्रु है। मुझे ज्ञात न था कि तू अपनी कुटी में बैठा हुआ परजा को मेरे

विरुद्ध भड़काता रहता है, अन्यथा आज तू मेरे सामने इस तरह जबान न चलाता। फिर कभी मेरे राज्य में पैर न रखना, वरना जान से हाथ धोयेगा।

विभीषण ने उठकर कहा—महाराज, आप मेरे बड़े भाई हैं इसलिए मैंने आपको समझाने का साहस किया था; उसका आपने मुझे यह दण्ड दिया। आपकी आज्ञा सिर आंखों पर। मैं जाता हूँ। आप फिर मेरा मुंह न देखेंगे, किन्तु इतना फिर कहता हूँ कि आपको एक दिन पछताना पड़ेगा। और उस समय आपको अभागे विभीषण की बात याद आयेगी।

आक्रमण

विभीषण यहां से अपमानित होकर सुगरीव की सेना में पहुंचा और सुगरीव से अपना सारा वृत्तान्त कहा। सुगरीव ने रामचन्द्र को उसके आने की सूचना दी। रामचन्द्र ने विचार किया कि कहीं यह रावण का भेदी न हो। हमारी सेना की दशा देखने के लिये आया हो। इसे तुरन्त सेना से निकाल देना चाहिये। अंगद, जामवंत और दूसरे नायकों ने भी यही परामर्श दिया। उस समय हनुमान बोले—आप लोग इस आदमी के बारे में किसी परकार सन्देह न करें। लंका में यदि कोई सच्चा और सज्जन पुरुष है, तो वह विभीषण है। जिस समय सारा दरबार मेरा शत्रु था, उस समय इसी आदमी ने मेरी जान बचायी थी। इसे अवश्य रावण ने राज्य से निकाल दिया है। यह अब आपकी शरण में आया है। इससे शीलरहित व्यवहार करना उचित नहीं। आखिर रामचन्द्र का सन्देह दूर हो गया। उन्होंने उसी समय विभीषण को बुलाया और बड़े तपाक से मिले।

विभीषण बोला—महाराज! आपसे मिलने की बहुत दिनों से आकांक्षा थी, वह आज पूरी हुई। मैं अपने भाई रावण के हाथों बहुत अपमानित होकर आपकी शरण आया हूँ। अब आप ही मेरा बेड़ा पार लगाइये। रावण ने मुझे इतनी निर्दयता से निकाला है, जैसे कोई कुत्ते को भी न निकालेगा। अब मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहता।

रामचन्द्र ने कहा—किन्तु निरपराध तो कोई अपने नौकर को भी नहीं निकालता। सगे भाई को कैसे निकालेगा ?

विभीषण—महाराज! मेरा अपराध केवल इतना ही था कि मैंने रावण से वह बात कही; जो उसे पसंद न थी। मैंने उसे समझाया था कि सीता जी को रामचन्द्र के पास पहुंचा दो। यह बात उसे तीर की तरह लग गयी। जो आदमी वासना का दास हो जाता है उसे भले और बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह अपने बारे में सच्ची बात सुनना कभी पसंद नहीं करता।

रामचन्द्र ने विभीषण को बहुत आश्वासन दिया और वादा किया कि रावण को मारकर लंका का राज्य तुम्हें दूंगा। उसी समय विभीषण को राज्यतिलक भी दे दिया। विभीषण ने भी हर हालत में रामचन्द्र की सहायता करने का पक्का वादा किया।

दूसरे दिन से लंका पर चढ़ाई करने की तैयारियां शुरू हो गयीं और सेना समुद्र के किनारे आकर समुद्र को पार करने की युक्ति सोचने लगी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि एक पुल बनाया जाय। नल और नील बड़े होशियार इंजीनियर थे। उन्होंने पुल बनाना परारंभ किया।

इधर रावण को जब खबर मिली की विभीषण रामचन्द्र से जा मिला, तो उसने दो जासूसों को सुगरीव की सेना का हालचाल मालूम करने के लिए भेजा। एक का नाम था शक, दूसरे का सारण। दोनों भेष बदलकर सुगरीव की सेना में आये और परत्येक बात की छानबीन करने लगे। संयोग से उन पर विभीषण की दृष्टि पड़ गयी। तुरन्त पहचान गये। उन्हें पकड़कर रामचन्द्र के सामने उपस्थित कर दिया। दोनों जासूस मारे भय के कांपने लगे, क्योंकि रीति के अनुसार उन्हें मृत्यु का दण्ड मिलना निश्चित था; पर रामचन्द्र को उन पर दया आ गयी। उन्हें बुलाकर कहा— तुम लोग डरो मत, हम तुम्हें कोई दण्ड नदेंगे। तुम खुशी से हर एक बात की जांच कर लो। कहो तो अपनी सेना की ठीकठीक गिनती बतला दूं, अपना रसद सामान दिखला दूं। अगर देखभाल चुके हो तो लौट जाओ, और यदि अभी देखना शेष हो तो मैं तुम्हें सहर्ष अनुमति देता हूं, खूब भली परकार देखभाल लो।

दोनों बहुत लज्जित हुए और जाकर रावण से बोले—महाराज ! आप रामचन्द्र से लड़ाई मत करें। वह बड़े साहसी हैं। आप उन पर विजय नहीं पा सकते। उनकी सेना का एकएक नायक हमारी एकएक सेना के लिए पर्याप्त है। किन्तु रावण तो अपने बल के नशे में अन्धा हो रहा था। वह किसी के परामर्श को कब ध्यान में लाता था। बोला— तुम दोनों देशद्रोही हो। मेरे सामने से निकल जाओ मैं ऐसे साहसहीनों की सूरत देखना नहीं चाहता।

किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र ने समुद्र पर पुल बांध लिया तो उसका नशा हिरन हो गया। उस दिन उसे सारी रात नींद नहीं आयी।

रावण के दरबार में अंगद

रामचन्द्र ने समुद्र को पार करके लंका पर घेरा डाल दिया। दुर्ग के चारों द्वारों पर चार बड़ेबड़े नायकों को खड़ा किया। सुगरीव को सारी सेना का सेनापति बनाया। आप और लक्ष्मण सुगरीव के साथ हो गये। तेज दौड़ने वालों को चुनचुनकर समाचार लाने और ले जाने के लिए नियुक्त किया। जिस नायक को कोई आज्ञा देनी होती, इन्हीं आदमियों द्वारा कहला भेजते थे। नगर के चारों द्वार बन्द हो गये। राक्षसों का बाहर निकलना दुर्गम हो गया। रसद का बाहर के देहातों से आना बन्द हो गया। लोग अन्दर भूखों मरने लगे।

रावण ने सोचा, अब तो रामचन्द्र की सेना लंका पर च आयी। मालूम नहीं; लड़ाई का फल क्या हो। एक बार सीता को सम्मत करने की अन्तिम चेष्टा कर लेनी चाहिये। अबकी उसने धमकी के बदले छल से काम लेने का निश्चय किया। एक कुशल कारीगर से रामचन्द्र की तस्वीर से मिलताजुलता एक सिर बनवाया। वैसे ही धनुष और बाण बनवाये और इन चीजों को सीता जी के सामने ले जाकर बोला—यह लो, तुम्हारे पति का सिर है, जिस पर तुम जान देती थीं। मेरी सेना के एक आदमी ने इन्हें लड़ाई में मार डाला है और उनका सिर काटकर लाया है। रावण के बल का अनुमान तुम इसी से कर सकती हो। अब मेरा कहना मानो। मेरी रानी बन जाओ।

सीता धोखे में आ गयीं। सिर पीटपीटकर रोने लगीं। संसार उनकी आंखों में अंधेरा हो गया। संयोग से विभीषण की पत्नी श्रमा उस समय अशोकवाटिका में मौजूद थी। सीताजी का शोकसंताप सुनकर वह दौड़ी आयी और पूछने लगी, क्या बात है? रावण ने देखा, अब भेद खुलना चाहता है, तो तुरन्त बनावटी सिर और धनुष वाण लेकर वहां से चल दिया। सीता जी ने रोकर श्रमा से यह दुर्घटना बयान की। श्रमा हंसकर बोली— बहन, यह सब रावण की दगाबाजी है। वह सिर बनावटी होगा। तुम्हें छलने के लिए रावण ने यह चाल चली है। रामचन्द्र तो दुर्ग के चारों ओर घेरा डाले हुए हैं। लंका में खलबली मची हुई है। कोई दुर्ग के बाहर नहीं निकल सकता। यहां किसमें इतना बल

है, जो रामचन्द्र से लड़ सके। उनके एक साधारण दूत ने लंका वालों के छक्के छुड़ा दिये, भला उन्हें कौन मार सकता है? श्रमा की बातों से सीता जी को आश्वासन मिला। समझ गयीं, यह रावण की दुष्टता थी।

उधर दुर्ग पर घेरा डाल करके रामचन्द्र ने सुगरीव से कहा—एक बार फिर रावण को समझाने की चेष्टा करनी चाहिये। यदि समझाने से मान जाय तो रक्तपात क्यों हो। विचार हुआ कि अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय। अंगद ने बड़ी परसन्नता से यह बात स्वीकार कर ली। रावण अपने सभासदों के साथ दरबार में बैठा था कि अंगद जा धमके और ऊंची आवाज से बोले—ऐ राक्षसों के राजा, रावण! मैं राजा रामचन्द्र का दूत हूँ। मेरा नाम अंगद है। मैं राजा बालि का पुत्र हूँ। मुझे राजा रामचन्द्र ने यह कहने के लिए भेजा है कि या तो आज ही सीता को वापस कर दो, या किले के बाहर निकलकर युद्ध करो।

रावण घमण्ड से अकड़कर बोला—जाकर अपने छोकरे राजा से कह दे कि रावण उससे लड़ने को तैयार बैठा हुआ है। सीता अब यहां से नहीं जा सकती। उसका विचार छोड़ दें अन्यथा उनके लिए अच्छा न होगा। राक्षसों की सेना जिस समय मैदान में आयेगी, सुगरीव और हनुमान दुम दबाकर भागते दिखायी देंगे। राक्षसों से अभी रामचन्द्र का पाला नहीं पड़ा है। हमने इन्द्र तक से लोहा मनवा लिया है। यह पहाड़ी चूहे किस गिनती में हैं।

अंगद—जिन लोगों को तुम पहाड़ी चूहा कहते हो, वह तुम्हारी एकएक सेना के लिए अकेले काफी हैं। यदि तुम उनके बल की परीक्षा लेना चाहते हो, तो उन्हीं पहाड़ी चूहों में से एक तुच्छ चूहा तुम्हारे दरबार में खड़ा है, उसकी परीक्षा कर लो। खेद है कि इस समय मैं राजदूत हूँ और दूत हथियार से काम नहीं ले सकता, अन्यथा इसी समय दिखा देता कि पहाड़ी चूहे किस गजब के होते हैं। है इस दरबार में कोई योद्धा, जो मेरे पैर को पृथ्वी से हटा दे? जिसे दावा हो, निकल आये।

अंगद की यह ललकार सुनकर कई सूरमा उठे और अंगद का पैर उठाने के लिए एड़ीचोटी का जोर लगाया, किन्तु जौ भर भी न हटा सके। अपनासा मुंह लेकर अपनी अपनी जगह पर जा बैठे। तब रावण स्वयं सिंहासन से उठा और अंगद के पैर पर झुककर उठाना चाहता था कि अंगद ने पैर खींच लिया और बोले—अगर पैरों पर सिर झुकाना है तो रामचन्द्र के पैरों पर सिर झुकाओ। मेरे पैर छूने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। रावण लज्जित होकर अपनी जगह पर जा बैठा।

अंगद अपना संदेश सुना ही चुके थे। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि रावण पर किसी के समझाने का परभाव न होगा, तो वह रामचन्द्र के पास लौट आये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

मेघनाद

आखिर दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। दिन भर तलवारें चलती रहीं। रात को भी लड़ने वालों ने दम न लिया। मृत शरीरों के ढेर लग गये। रक्त की नदियां बह गयीं। रामचन्द्र की सेना इतनी वीरता से लड़ी कि राक्षसों की हिम्मत टूट गयी। रावण जिस सेना को भेजता, वही घण्टेदो घण्टे में जान लेकर भागती। यहां तक कि उसने झल्लाकर अपने लड़के मेघनाद को भेजा। मेघनाद बड़ा वीर था। उसे इन्द्रजीत का उपनाम मिला हुआ था। राक्षसों को उस पर गर्व था।

मेघनाद के क्षेत्र में आते ही लड़ाई कर रंग बदल गया। कहां तो राक्षस लोग मैदान से भाग रहे थे, कहां अब रामचन्द्र की सेना में भगदड़ पड़ गयी। मेघनाद ने वाणों की ऐसी वर्षा की कि आकाश काला हो गया। लक्ष्मण ने अपनी सेना को दबते देखा तो धनुष और बाण लेकर मैदान में निकल आये। मेघनाद लक्ष्मण को देखकर और भी उत्साह से लड़ने लगा और ललकारकर बोला—आज तुम्हारी मृत्यु मेरे हाथों लिखी है। तुमसे लड़ने की बहुत दिनों से कामना थी। आज वह पूरी हो गई। लक्ष्मण ने उत्तर दिया—हार और जीत ईश्वर के हाथ है। डींग मारना वीरों का काम नहीं। किन्तु सम्भवतः तुम भी जीवित घर न लौटोगे। मेघनाद ने जोश में आकर नाना परकार के अस्त्रशस्त्र काम में लाने परारम्भ किये। कभी कोई विषैला बाण चला देता, कभी गदा लेकर पिल पड़ता। किन्तु लक्ष्मण भी कम वीर न थे। वह उसके सारे आक्रमणों को अपने वाणों से व्यर्थ कर देते थे। यहां तक कि उन्होंने उसके रथ, रथवान, घोड़े, सबको वाणों से छेद डाला। मेघनाद पैदल लड़ने लगा। अब उसे अपनी जान बचाना कठिन हो गया। चाहता था कि तनिक दम लेने का अवकाश मिले तो दूसरा रथ लाऊँ; मगर लक्ष्मण इतनी तेजी से बाण चलाते थे कि उसे हिलने का भी अवकाश न मिलता था। आखिर उसने भयानक होकर शक्तिबाण चला दिया। यह बाण इतना घातक था कि इससे घायल तुरन्त मर जाता था। वह बाण लगते ही लक्ष्मण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मेघनाद परसन्नता से मतवाला हो गया। उसी समय भागा हुआ रावण के पास गया और बोला—दो भाइयों में से एक को तो मैंने ठण्डा कर दिया। ऐसा शक्तिबाण मारा है कि बच नहीं सकता। कल दूसरे भाई को मार लूँगा। बस, युद्ध का अन्त हो जायगा। रावण ने बेटे को छाती से लगा लिया।

उधर रामचन्द्र की सेना में कुहराम मच गया। हनुमान ने मूर्छित लक्ष्मण को गोद में उठाया और रामचन्द्र के पास लाये। राम ने लक्ष्मण की यह दशा देखी तो बलात आंखों से आंसू जारी हो गये। रोरोकर कहने लगे—हाय लक्ष्मण! तुम मुझे छोड़कर कहां चले गये? हाय! मुझे क्या ज्ञात था कि तुम यों मेरा साथ छोड़ दोगे, नहीं तो मैं पिता की आज्ञा को रद्द कर देता, कभी वन की ओर पग न उठाता। अब मैं कौन मुंह लेकर अयोध्या जाऊंगा। पत्नी के पीछे भाई की जान गंवाकर किसको मुंह दिखाऊंगा। पत्नी तो फिर भी मिल सकती है, पर भाई कहां मिलेगा। हाय! मैंने सदैव के लिए अपने माथे पर कलंक लगा लिया। जामवन्त अभी तक कहीं लड़ रहा था। राम का विलाप सुनकर दौड़ा हुआ आया और लक्ष्मण को ध्यान से देखने लगा। बू अनुभवी आदमी था। कितनी ही लड़ाइयां देख चुका था। बोला—महाराज! आप इतने निराश क्यों होते हैं? लक्ष्मण जी अभी जीवित हैं। केवल मूर्छित हो गये हैं। विष सारे शरीर में दौड़ गया है। यदि कोई चतुर वैद्य मिल जाय तो अभी जहर उतर जाय और यह उठ बैठें। वैद्य की तलाश करनी चाहिये। विभीषण से कहा—शहर में सुखेन नाम का एक वैद्य रहता है। विष की चिकित्सा करने में वह बहुत दक्ष है। उसे किसी परकार बुलाना चाहिये। हनुमान ने कहा—मैं जाता हूँ, उसे लिये आता हूँ। विभीषण से सुखेन के मकान का पता पूछकर वह वेश बदलकर शहर में जा पहुंचे और सुखेन से यह हाल कहा। सुखेन ने कहा—भाई, मैं वैद्य हूँ। रावण के दरबार से मेरा भरणपोषण होता है। उसे यदि ज्ञात हो जायगा कि मैंने लक्ष्मण की चिकित्सा की है, तो मुझे जीवित न छोड़ेगा।

हनुमान ने कहा—आपको ईश्वर ने जो निपुणता परदान की है, उससे हर एक आदमी को लाभ पहुंचाना आपका कर्तव्य है। भय के कारण कर्तव्य से मुंह मोड़ना आप जैसे वयोवृद्ध के लिए उचित नहीं।

सुखेन निरुत्तर हो गया। उसी समय हनुमान के साथ चल खड़ा हुआ। बापे के कारण वह तेज न चल सकता था, इसलिए हनुमान ने उसे गोद में उठा लिया और भागते हुए अपनी सेना में आ पहुंचे। सुखेन ने लक्ष्मण की नाड़ी

देखी, शरीर देखा और बोला— अभी बचने की आशा है। संजीवनी बूटी मिल जाय तो बच सकते हैं। किन्तु सूर्य निकलने के पहले बूटी यहां आ जानी चाहिये। अन्यथा जान न बचेगी।

जामवंत ने पूछा—संजीवनी बूटी मिलेगी कहां ?

सुखेन बोला—उत्तर की ओर एक पहाड़ है, वहीं यह बूटी मिलेगी।

बारह घण्टे के अन्दर वहां जाना और बूटी खोजकर लाना सरल काम न था। सब एकदूसरे का मुंह ताकते थे। किसी को साहस न होता था कि जाने को तैयार हो। आखिर रामचन्द्र ने हनुमान से कहा—मित्र! कठिनाई तुम्हीं सरल बना सकते हो। तुम्हारे सिवा मुझे दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। हनुमान को आज्ञा मिलने की देर थी। सुखेन से बूटी का पता पूछा और आंधी की तरह दौड़े। कई घंटों में वे उस पहाड़ पर जा पहुंचे; किन्तु रात के समय बूटी की पहचान हो सकी। बहुतसी घासपात एकत्रित थी। हनुमान ने उन सबों को उखाड़ लिया और उल्टे पैरों लौटे।

इधर सब लोग बैठे हनुमान की परतीक्षा कर रहे थे। एकएक पल की गिनती की जा रही थी। अब हनुमान अमुक स्थान पर पहुंचे होंगे, अब वहां से चले होंगे, अब पहाड़ पर पहुंचे होंगे, इस परकार अनुमान करतेकरते तड़का हो गया, किन्तु हनुमान का कहीं पता नहीं। रामचन्द्र घबराने लगे। एक घंटे में हनुमान न आ गये तो अनर्थ हो जायगा। कई आदमी उन्हें देखने के लिए छूटे, कई आदमी वृक्षों पर चकर उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाने लगे, पर हनुमान का कहीं निशान नहीं! अब केवल आध घण्टे की और अवधि है। इधर लक्ष्मण की दशा पलपल पर खराब होती जाती थी। रामचन्द्र निराश होकर फिर रौने लगे कि एकाएक अंगद ने आकर कहा—महाराज! हनुमान दौड़ा चला आ रहा है। बस आया ही चाहता है। रामचन्द्र का चेहरा चमक उठा। वह अधीर होकर स्वयं हनुमान की ओर दौड़े और उसे छाती से लगा लिया। हनुमान ने घासपात का एक णेर सुखेन के सामने रख दिया। सुखेन ने इसमें से संजीवनी बूटी निकाली और तुरन्त लक्ष्मण के घाव पर इसका लेप किया। बूटी ने अकसीर का काम किया। देखतेदेखते घाव भरने लगा। लक्ष्मण की आंखें खुल गयीं। एक घण्टे में वह उठ बैठे और दोपहर तक तो बातें करने लगे। सेना में हर्ष के नारे लगाये गये।

कुम्भकर्ण

रावण ने जब सुना कि लक्ष्मण स्वस्थ हो गये तो मेघनाद से बोला—लक्ष्मण तो शक्तिबाण से भी न मरा। अब क्या युक्ति की जाय ? मैंने तो समझा था, एक का काम तमाम हो गया, अब एक ही और बाकी है, किन्तु दोनोंके-दोनों फिर से संभल गये।

मेघनाद ने कहा—मुझे भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि लक्ष्मण कैसे बच गया। शक्तिबाण का घाव तो घातक होता है। इक्कीस घण्टे के अन्दर आदमी मर जाता है। अवश्य उन लोगों को संजीवनी बूटी मिल गयी। खैर, फिर समझूंगा, जाते कहां हैं। आज ही दोनों को णेर कर देता, लेकिन कल का थका हुआ हूं। मैदान में न जा सकूंगा। आज चाचा कुम्भकर्ण को भेज दीजिये।

कुम्भकर्ण रावण का भाई था। ऐसा डीलडौल दूसरे सूरमा राक्षसों में न था। उसे देखकर हाथी कासा आभास होता था। वीर ऐसा था कि कोई उसका सामना करने का साहस न कर सकता था। किन्तु जितना ही वह वीर था, उतना ही परमादी और विलासी था। रातदिन शराब के नशे में मस्त पड़ा रहता। लंका पर आक्रमण हो गया, हजारों

आदमी मारे जा चुके, पर उसे अब तक कुछ खबर न थी कि कहां क्या हो रहा है। रावण उसके पास पहुंचा तो देखा कि वह उस समय भी बेहोश पड़ा हुआ है। शराब की बोतल सामने पड़ी हुई थी। रावण ने उसका कंधा पकड़कर जोर से हिलाया, तब उसकी आंखें खुलीं। बोला—कैसे आराम की नींद ले रहा था, आपने व्यर्थ जगा दिया।

रावण ने कहा—भैया, अब सोने का समय नहीं रहा। रामचन्द्र ने लंका पर घेरा डाल लिया। हमारे कितने ही आदमी काम आ चुके। मेघनाद कल लड़ा था, पर आज थका हुआ है। अब तुम्हारे सिवा और कोई दूसरा सहायक नहीं दिखायी देता।

यह सुनते ही कुम्भकर्ण संभलकर उठ बैठा। हथियार बांधे और मैदान की ओर चल खड़ा हुआ। उसे मैदान में देखकर हनुमान, अंगद, सुगरीव सबके-सब दहल उठे। आदमी क्या पूरा देव था। साधारण सैनिक तो उसकी भयानक आकृति ही देखकर भाग खड़े हुए। कितने ही नायकों को उसने आहत कर दिया। आखिर रामचन्द्र स्वयं उससे लड़ने को तैयार हुए। उन्हें देखते ही कुम्भकर्ण ने भाले का वार किया। मगर रामचन्द्र ने वार खाली कर दिया और दो तीर इतनी फुर्ती से चलाये कि उसके दोनों हाथ कट गये। तीसरा तीर उसके सीने में लगा। काम तमाम हो गया। राक्षससेना ने अपने नायक को गिरते देखा तो भाग खड़े हुए। इधर रामचन्द्र की सेना में खुशी मनायी जाने लगी।

रावण को जब यह समाचार मिला तो सिर पीटकर रोने लगा। कुम्भकर्ण से उसे बड़ी आशा थी। वह धूल में मिल गयी। भाई के शोक में बड़ी देर तक विलाप करता रहा।

मेघनाद का मारा जाना

दूसरे दिन मेघनाद बड़े सजधज से मैदान में आया। उसने दोनों भाइयों को मार गिराने का निश्चय कर लिया था। सारी रात देवी की पूजा करता रहा था। उसे अपने बल और शौर्य का बड़ा अभिमान था। रावण की सारी आशायें आज ही की लड़ाई पर निर्भर थीं। लंका में पहले ही से विजय का उत्सव मनाने की तैयारियां होने लगीं। मेघनाद ने मैदान में आकर डंके पर चोट दिलवायी तो विभीषण ने उसके सामने जाकर कहा—मेघनाद, मैं जानता हूं कि बल और साहस में तुम अपना समान नहीं रखते, किन्तु औचित्य की सदैव जीत हुई है और सदैव होगी। मेरा कहना मानो, चलकर रामचन्द्र से संधि कर लो। वह तुम्हें क्षमा कर देंगे।

मेघनाद ने क्रोध से आंखें निकालकर कहा—चचा साहब, तुम्हें लाज नहीं आती कि मुझे समझाने आये हो! देशद्रोह से ब्रकर संसार में दूसरा अपराध नहीं। जो आदमी शत्रु से मिलकर अपने घर और अपने देश का अहित करता है, उसकी सूरत देखना भी पाप है। आप मेरे सामने से चले जाइये।

विभीषण तो उधर लज्जित होकर चला गया, इधर लक्ष्मण ने सामने आकर मेघनाद को युद्ध का निमंत्रण दिया। लक्ष्मण को देखकर मेघनाद बोला—अभी दोचार दिन घाव की मरहमपट्टी और करवा लेते, कहीं आज घाव फिर न ताजा हो जाय। जाकर अपने बड़े भाई को भेज दो।

लक्ष्मण ने धनुष पर बाण च़ाकर कहा—ऐसेऐसे घावों की वीर लोग लेशमात्र चिंता नहीं करते। आज एक बार फिर हमारी और तुम्हारी हो जाय। तनिक देख लो कि शेर घायल होकर कितना भयावना हो जाता है। बड़े भाई साहब का मुकाबला तो तुम्हारे पिता ही से होगा।

दोनों वीरों ने तीर चलाने शुरू कर दिये। घन्घन्, तन्तन की आवाजें आने लगीं। मेघनाद पहले तो विजयी हुआ, लक्ष्मण का उसके वारों को काटना कठिन हो गया, किन्तु ज्योंज्यों समय बीतता गया, लक्ष्मण संभलते गये, और मेघनाद कमजोर पड़ता जाता था, यहां तक कि लक्ष्मण उस पर विजयी हो गये और एक बाण उसकी गर्दन पर ऐसा मारा कि उसका सिर कटकर अलग जा गिरा।

मेघनाद के गिरते ही राक्षसों के हाथपांव फूल गये। भगदड़ पड़ गयी। रावण ने यह समाचार सुना तो उसके मुंह से ठंडी सांस निकल गयी। आंखों में अंधेरा छा गया। परतिशोध की ज्वाला से वह पागल हो गया। राम और लक्ष्मण तो उसके वश के बाहर थे, सीताजी का वध कर डालने के लिए तैयार हो गया। तलवार लेकर दौड़ता हुआ अशोक वाटिका में पहुंचा। सीता जी ने उसके हाथ में नंगी तलवार देखी, तो सहम उठी; किन्तु रावण का मंत्री बड़ा बुद्धिमान था। वह भी उसके पीछेपीछे दौड़ता चला गया था। रावण को एक अवला स्त्री की जान पर उद्यत देखकर बोला—महाराज, धृष्टता क्षमा हो, स्त्री पर हाथ उठाना आपकी मयार्दा के विरुद्ध है। आप वेदों के पण्डित हैं। साहस और वीरता में आज संसार में आपका समान नहीं। अपने पद और ज्ञान का ध्यान कीजिये और इस कर्म से विमुख होइये। इन बातों ने रावण का क्रोध ठंडा कर दिया। तलवार म्यान में रख ली और लौट आया।

उसी समय मेघनाद की पतिवरता स्त्री सुलोचना ने आकर कहा—महाराज, अब मैं जीवित रहकर क्या करूंगी। मेरे पति का सिर मंगवा दीजिये, उसे लेकर मैं सती हो जाऊंगी।

रावण ने आंखों में आंसू भरकर कहा—बेटी, तेरे पति का सिर तुझे उसी समय मिलेगा, जब मैं दोनों भाइयों का सिर काट लूंगा धैर्य रख।

सुलोचना अपनी सास मंदोदरी के पास आयी। दोनों सासबहुएं गले मिलकर खूब रोईं। तब सुलोचना बोली—माता जी, मैं अब अनाथ हो गयी। मेरे पति का सिर मंगवा दीजिये, तो सती हो जाऊं। अब जीकर क्या करूंगी। जहां स्वामी हैं वहीं मैं भी जाऊंगी। यह वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता।

मंदोदरी ने बहू को प्यार करके कहा—बेटी, यदि तुमने यही निश्चय किया है, तो शुभ हो। मेघनाद का सिर और तो किसी परकार न मिलेगा, तुम जाकर स्वयं मांगो तो भले ही मिल सकता है। रामचन्द्र बड़े नेक आदमी हैं। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी मांग को अस्वीकार न करेंगे।

सुलोचना उसी समय राजमहल से निकलकर रामचन्द्र की सेना में आयी और रामचन्द्र के सम्मुख जाकर बोली—महाराज! एक अनाथ विधवा आपसे एक परार्थना करने आयी है, उसे स्वीकार कीजिये। मेरे पति वीर मेघनाद का सिर मुझे दे दीजिये।

रामचन्द्र ने तुरन्त मेघनाद का सिर सुलोचना को दिलवा दिया और उसके थोड़ी ही देर बाद सुलोचना सती हो गयी। चिता की लपट आकाश तक पहुंची। किसी ने चाहे सुलोचना को जाते न देखा, पर वह स्वर्ग में परविष्ट हो गयी।

रावण युद्धक्षेत्र में

रात भर तो रावण शोक और क्रोध से जलता रहा। सबेरा होते ही मैदान की तरफ चला। लंका की सारी सेना उसके साथ थी। आज युद्ध का निर्णय हो जायगा, इसलिए दोनों ओर के लोग अपनी जानें हथेलियों पर लिये तैयार बैठे थे। रावण को मैदान में देखते ही रामचन्द्र स्वयं तीर और कमान लिये निकल आये। अब तक उन्होंने केवल रावण का नाम सुना था, उसकी सूरत देखी तो मारे क्रोध के आंखों से ज्वाला निकलने लगी। इधर रावण को भी अपने दो बेटों के रक्त का और अपनी बहन के अपमान का बदला लेना था। घमासान युद्ध होने लगा। रावण की बराबरी करने वाला लंका में तो क्या, रामचन्द्र की सेना में भी कोई न था। सुगरीव, अंगद, हनुमान इत्यादि वीर उस पर एक साथ भाले, गदा और तीर चलाते थे, नील और नल उस पर पत्थर मारते थे, पर उसने इतनी तेजी से तीर चलाये कि कोई सामने न ठहर सका। लक्ष्मण ने देखा कि रामचन्द्र उसके मुकाबले में अकेले रहे जाते हैं तो वह भी आ खड़े हुए और तीरों की बौछार करने लगे। किन्तु रावण पहाड़ की नाई अटल खड़ा सबके आक्रमणों का जवाब दे रहा था। आखिर उसने अवसर पाकर एक तीर ऐसा चलाया कि लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े; दूसरा तीर रामचन्द्र पर पड़ा; वह भी गिर पड़े रावण ने तुरन्त तलवार निकाली और चाहता था कि रामचन्द्र का वध कर दे कि हनुमान ने लपककर उसके सीने में एक गदा इतनी जोर से मारी कि वह संभल न सका। उसका गिरना था कि राम और लक्ष्मण उठ बैठे। रावण भी होश में आ गया। फिर लड़ाई होने लगी। आखिर रामचन्द्र का एक तीर रावण के सीने में घुस गया। रक्त की धारा बह निकली। उसकी आंखें बन्द हो गयीं। रथवान ने समझा, रावण का काम तमाम हो गया। रथ को भगाकर नगर की ओर चला। रास्ते में रावण को होश आ गया। रथ को नगर की ओर जाते देखकर क्रोध से आग बबूला हो गया। उसी समय रथ को मैदान की ओर ले चलने की आज्ञा दी।

संयोग से उसी समय विभीषण सामने आ गया। रावण ने उसे देखते ही भाले से वार किया। चाहता था कि उसकी धोखेबाजी का दण्ड दे दे। किन्तु लक्ष्मण ने एक तीर चलाकर भाले को काट डाला। विभीषण की जान बच गयी। अबकी रावण ने अग्निबाण छोड़ने शुरू किये। इन बाणों से आग की लपटें निकलती थीं। रामचन्द्र की सेना में खलबली पड़ गयी। किन्तु रावण के सीने में जो घाव लगा था उससे वह परत्येक क्षण

निर्बल होता जाता था, यहां तक कि उसके हाथ से धनुष छूटकर गिर पड़ा। उस समय रामचन्द्र ने कहा—राजा रावण, अब तुम्हें ज्ञात हो गया कि हम लोग उतने निर्बल नहीं हैं, जितना तुम समझते थे? तुम्हारा सारा परिवार तुम्हारी मूर्खता का शिकार हो गया। क्या अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलीं। अब भी यदि तुम अपनी दुष्टता छोड़ दो तो हम तुम्हें क्षमा कर देंगे।

रावण ने संभलकर धनुष उठा लिया और बोला—क्या तुम समझते हो कि कुम्भकर्ण और मेघनाद के मारे जाने से मैं डर गया हूँ? रावण को अपने साहस और बल का भरोसा है। वह दूसरों के बल पर नहीं लड़ता। वीरों की सन्तान लड़ाई में मरने के सिवा और होती ही किसलिए है। अब संभल जाओ, मैं फिर वार करता हूँ।

किन्तु यह केवल गीदड़भभकी थी। रामचन्द्र ने अबकी जो तीर मारा, वह

फिर रावण के सीने में लगा। एक घाव पहले लग चुका था, इस दूसरे घाव ने अन्त

कर दिया। रावण रथ के नीचे गिर पड़ा और तड़पतड़प कर जान दे दी। अत्याचारी

था, अन्यायी था, नीच था; किन्तु वीर भी था। मरते समय भी धनुष उसके हाथ में था।

रावण को रथ से नीचे गिरते देख विभीषण दौड़कर उसके पास आ गया। देखा तो वह दम तोड़ रहा था। उस समय भाई के रक्त ने जोश मारा। विभीषण रावण के रक्त लुण्ठित मृत शरीर से लिपटकर फूटफूटकर रोने लगा। इतने में रावण की रानी मन्दोदरी और दूसरी रानियां भी आकर विलाप करने लगीं। रामचन्द्र ने उन्हें समझाकर विदा किया। सैनिकों ने चाहा कि चलकर लंका को लूटें, किन्तु रामचन्द्र ने उन्हें मना किया। हारे हुए शत्रु के साथ वे किसी परकार की ज्यादाती नहीं करना चाहते थे।

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

रामचर्चा
प्रेमचंद

[अनुक्रम](#)

अध्याय 6

[पीछे](#)
[आगे](#)

विभीषण का राज्याभिषेक

एक दिन वह था कि विभीषण अपमानित होकर रोता हुआ निकला था, आज वह विजयी होकर लंका में परविष्ट हुआ। सामने सवारों का एक समूह था। परकारपरकार के बाजे बज रहे थे। विभीषण एक सुन्दर रथ पर बैठे हुए थे, लक्ष्मण भी उनके साथ थे। पीछे सेना के नामी सूरमा अपनेअपने रथों पर शान से बैठे हुए चले जा रहे थे। आज विभीषण का नियमानुसार राज्याभिषेक होगा। वह लंका की गद्दी पर बैठेंगे। रामचन्द्र ने उनको वचन दिया था उसे पूरा करने के लिए लक्ष्मण उनके साथ जा रहे हैं। शहर में ढिंढोरा पिट गया है कि अब राजा विभीषण लंका के राजा हुए। दोनों ओर छतों से उन पर फूलों की वर्षा हो रही है। धनीमानी नजरें उपस्थित करने की तैयारियां कर रहे हैं। सब बन्दियों की मुक्ति की घोषणा कर दी गयी है। रावण का कोई शोक नहीं करता। सभी उसके अत्याचार से पीड़ित थे। विभीषण का सभी यश गा रहे हैं।

विभीषण को गद्दी पर बिठाकर रामचन्द्र ने हनुमान को सीता के पास भेजा। विभीषण पालकी लेकर पहले ही से उपस्थित थे। सीता जी के हर्ष का कौन अनुमान कर सकता है। इतने दिनों के कैद के बाद आज उन्हें आजादी मिली है। मारे हर्ष के उन्हें मूर्च्छा आ गयी, जब चेतना आयी तो हनुमान ने उनके चरणों पर सिर झुकाकर कहा माता! श्री रामचन्द्र जी आपकी परतीक्षा में बैठे हुए हैं। वह स्वयं आते, किन्तु नगर में आने से विवश हैं। सीता जी खुशीखुशी पालकी पर बैठीं। रामचन्द्र से मिलने की खुशी में उन्हें कपड़ों की भी चिन्ता न थी। किन्तु विभीषण की रानी श्रमा ने उनके शरीर पर उबटन मला, सिर में तेल डाला, बाल गूँथे, बहुमूल्य साड़ी पहनायी और विदा किया। सवारी रवाना हुई। हजारों आदमी साथ थे।

रामचन्द्र को देखते ही सीता जी की आंखों से खुशी के आंसू बहने लगे। वह पालकी से उतरकर उनकी ओर चलीं। रामचन्द्र अपनी जगह पर खड़े रहे। उनके चेहरे से खुशी नहीं जाहिर हो रही थी, बल्कि रंज जाहिर होता था। सीता निकट आ गयीं। फिर भी वह अपनी जगह पर खड़े रहे। तब सीता जी उनके हृदय की बात समझ गयीं। वह उनके पैरों पर नहीं गिरीं, सिर झुकाकर खड़ी हो गयीं। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे।

एक मिनट के बाद सीता जी ने लक्ष्मण से कहा—भैया, खड़े क्या देखते हो। मेरे लिए एक चिता तैयार कराओ। जब स्वामी जी को मुझसे घृणा है, तो मेरे लिए आग की गोद के सिवा और कोई स्थान नहीं। दर्शन हो गये, मेरे

लिए यही सौभाग्य की बात है। हाय! क्या सोच रही थी, और क्या हुआ।

यह बात न थी कि रामचन्द्र को सीता जी पर किसी परकार का संदेह था। वह भली परकार जानते थे कि सीताजी ने कभी रावण से सीधे मुंह बात नहीं की। सदैव उससे घृणा करती रहीं। किन्तु संसार को निर्मलहृदयता पर कैसे विश्वास आता? सीता जी भी मन में यह बात भली परकार समझती थीं। इसलिए उन्होंने अपने विषय में कुछ भी न कहा, जान देने के लिए तैयार हो गयीं। रामचन्द्र का कलेजा फटा जाता था, किन्तु विवश थे।

तनिक देर में चिता तैयार हो गयी। उसमें आग दी गयी, लपटें उठने लगीं। सीता जी ने रामचन्द्र को परणाम किया और चिता में कूदने चलीं। वहां सारी सेना एकत्रित थी। सीता जी को आग की ओर ब्रते देखकर चारों ओर शोर मच गया। सब लोग चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे—हमको सीता जी पर किसी परकार का सन्देह नहीं है! वह देवी हैं, हमारी माता हैं, हम उनकी पूजा करते हैं। हनुमान, अंगद, सुगरीव इत्यादि सीता जी का रास्ता रोककर खड़े हो गये। उस समय रामचन्द्र को विश्वास हुआ कि अब सीता जी की पवित्रता पर किसी को सन्देह नहीं। उन्होंने आगे बढ़कर सीता जी को छाती से लगा लिया। सारा क्षेत्र हर्ष ध्वनि से गूंज उठा।

अयोध्या की वापसी

रामचन्द्र ने लंका पर जिस आशय से आक्रमण किया था, वह पूरा हो गया। सीता जी छुड़ा लीं गयीं, रावण को दण्ड दिया जा चुका। अब लंका में रहने की आवश्यकता न थी। रामचन्द्र ने चलने की तैयारी करने का आदेश दिया। विभीषण ने जब सुना कि रामचन्द्र जा रहे हैं तो आकर बोला—महाराज! मुझसे कौनसा अपराध हुआ जो आपने इतने शीघ्र चलने की ठान ली? भला दसपांच दिन तो मुझे सेवा करने का अवसर दीजिये। अभी तो मैं आपका कुछ आतिथ्य कर ही न सका।

रामचन्द्र ने कहा—विभीषण! मेरे लिए इससे अधिक परसन्नता की और कौनसी बात हो सकती थी कि कुछ दिन तुम्हारे संसर्ग का आनन्द उठाऊं। तुमजैसे निर्मल हृदय पुरुष बड़े भाग्य से मिलते हैं। किन्तु बात यह है कि मैंने भरत से चौदहवें वर्ष पूरे होते ही लौट जाने का परण किया था। अब चौदह वर्ष पूरे होने में दो ही चार दिन का विलम्ब है। यदि मुझे एक दिन की भी देर हो गयी, तो भरत को बड़ा दुःख होगा। यदि जीवित रहा तो फिर कभी भेंट होगी। अभी तो अयोध्या तक पहुंचने में महीनों लगेंगे।

विभीषण—महाराज! अयोध्या तो आप दो दिन में पहुंच जायेंगे।

रामचन्द्र—केवल दो दिन में? यह कैसे सम्भव है?

विभीषण—मेरे भाई रावण ने अपने लिए एक वायुयान बनवाया था। उसे पुष्पक विमान कहते हैं! उसकी चाल एक हजार मील परतिदिन है। बड़े आराम की चीज है। दसबारह आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो आज के तीसरे दिन आप अयोध्या में होंगे। किन्तु मेरी इतनी परार्थना आपको स्वीकार करनी पड़ेगी! मैं भी आपके साथ चलूंगा। जहां आपके हजारों चाकर हैं वहां मुझे भी एक चाकर समझिये।

उसी दिन पुष्पकविमान आ गया। विचित्र और आश्चर्यजनक चीज थी। कल घुमाते ही हवा में उठ कर उड़ने लगती थी। बैठने की जगह अलग, सोने की जगह अलग, हीरेजवाहरात जड़े हुए। ऐसा मालूम होता था कि कोई उड़ने

वाला महल है। रामचन्द्र इसे देखकर बहुत परसन्न हुए किन्तु जब चलने को तैयार हुए तो हनुमान, सुगरीव, अंगद, नील, जामवन्त, सभी नायकों ने कहा—महाराज! आपकी सेवा में इतने दिनों से रहने के बाद अब यह वियोग नहीं सहा जाता। यदि आप यहां नहीं रहते हैं तो हम लोगों को ही साथ लेते चलिए। वहां आपके राज्याभिषेक का उत्सव मनायेंगे, कौशल्या माता के दर्शन करेंगे, गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज इत्यादि के उपदेश सुनेंगे और आपकी सेवा करेंगे।

रामचन्द्र ने पहले तो उन्हें बहुत समझाया कि आप लोगों ने मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं, वही काफी हैं, अब और अधिक उपकारों के बोझ से न दबाइये। किन्तु जब उन लोगों ने बहुत आग्रह किया तो विवश होकर उन लोगों को भी साथ ले लिया। सबके-सब विमान में बैठे और विमान हवा में उड़ चला। रामचन्द्र और सीता में बातें होने लगीं। दोनों ने अपने-अपने वृत्तान्त वर्णन किये। विमान हवा में उड़ता चला जाता था। जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से जा रहे थे। रास्ते में जो परसिद्ध स्थान आते थे, उन्हें रामचन्द्र जी सीता जी को दिखा देते थे। पहले समुद्र दिखायी दिया। उस पर बंधा हुआ पुल देखकर सीता जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वह स्थान आया, जहां रामचन्द्र ने बालि को मारा था। इसके बाद किष्किन्धापुरी दिखाई दी। रामचन्द्र ने कहा—जिस राजा सुगरीव की सहायता से हमने लंका विजय की, उनका मकान यही है। सीता जी ने सुगरीव की रानी से भेंट करने की इच्छा परकट की, इसलिए विमान रोक दिया गया, और लोग सुगरीव के घर उतरे। तारा ने सीता जी के गले में फूलों की माला पहनायी और अपने साथ महल में ले गयी। सुगरीव ने अपने परतिष्ठित अतिथियों की अभ्यर्थना की और उन्हें दोचार दिन रोकना चाहा, किन्तु रामचन्द्र कैसे रुक सकते थे। दूसरे दिन विमान फिर रवाना हुआ। सुगरीव इत्यादि भी उस पर बैठकर चले। रामचन्द्र जी से उन लोगों को इतना परेम हो गया कि उनको छोड़ते हुए इन लोगों को दुःख होता था।

रामचन्द्र ने फिर सीता जी को मुख्यमुख्य स्थान दिखाना परारम्भ किया। देखो, यह वह वन है जहां हम तुम्हें तलाश करते फिरते थे। अहा, देखो, वह छोटीसी झोंपड़ी जो दिखायी दे रही है वही शबरी का घर है। यहां रात भर हमने जो आराम पाया, उतना कभी अपने घर भी न पाया था। यह लो, वह स्थान आ गया जहां पवित्र जटायु से हमारी भेंट हुई थी। वह उसकी कुटी है। केवल दीवारें शेष रह गयी हैं। जटायु ने हमें तुम्हारा पता न बताया होता, तो ज्ञात नहीं कहांकहां भटकते फिरते। वह देखा पंचवटी है। वह हमारी कुटी है। कितना जी चाहता है कि चल कर एक बार उस कुटी के दर्शन कर लूं। सीता जी इस कुटी को देखकर रोने लगीं। आह! यहां से उन्हें रावण हर ले गया था। वह दिन, वह घड़ी कितनी अशुभ थी कि इतने दिनों तक उन्हें एक अत्याचारी की कैद में रहना पड़ा। रावण का वह साधुओं कासा वेश उनकी आंखों में फिर गया। आंसू किसी परकार न थमते थे। कठिनता से रामचन्द्र ने उन्हें समझा कर चुप किया। विमान और आगे बढ़ा। अगस्त्य मुनि का आश्रम दिखायी दिया। रामचन्द्र ने उनके दर्शन किए, किन्तु रुकने का अवकाश न था, इसलिए थोड़ी देर के बाद फिर विमान रवाना हुआ। चित्रकूट दिखायी दिया। सीताजी अपनी कुटी देखकर बहुत परसन्न हुईं। कुछ देर बाद परयाग दिखायी दिया। यहां भारद्वाज मुनि का आश्रम था। रामचन्द्र ने विमान को उतारने का आदेश दिया और मुनि जी की सेवा में उपस्थित हुए। मुनि जी उनसे मिलकर बहुत परसन्न हुए। बड़ी देर तक रामचन्द्र उन्हें अपने वृत्तान्त सुनाते रहे। फिर और बातें होने लगीं। रामचन्द्र ने कहा—महाराज ! मुझे तो आशा न थी कि फिर आपके दर्शन होंगे। किन्तु आपके आशीर्वाद से आज फिर आपके चरणस्पर्श का अवसर मिल गया।

भरद्वाज बोले—बेटा ! जब तुम यहां से जा रहे थे, उस समय मुझे जितना दुःख हुआ था, उससे कहीं अधिक परसन्नता आज तुम्हारी वापसी पर हो रही है।

राम—आपको अयोध्या के समाचार तो मिलते होंगे ?

भरद्वाज—हां बेटा, वहां के समाचार तो मिलते रहते हैं! भरत तो अयोध्या से दूर एक गांव में कुटी बना कर रहते हैं; किन्तु शत्रुघ्न की सहायता से उन्होंने बहुत अच्छी तरह राज्य का कार्य संभाला है। परजा परसन्न है। अत्याचार का नाम भी नहीं है। किन्तु सब लोग तुम्हारे लिए अधीर हो रहे हैं। भरत तो इतने अधीर हैं कि यदि तुम्हें एक दिन की भी देर हो गयी तो शायद तुम उन्हें जीवित न पाओ।

रामचन्द्र ने उसी समय हनुमान को बुलाकर कहा—तुम अभी भरत के पास जाओ, और उन्हें मेरे आने की सूचना दो। वह बहुत घबरा रहे होंगे। मैं कल सवेरे यहां से चलूंगा। यह आज्ञा पाते ही हनुमान अयोध्या की ओर रवाना हुए और भरत का पता पूछते हुए नन्दिग्राम पहुंचे। भरत ने ज्योंही यह शुभ समाचार सुना उन्हें मारे हर्ष के मूर्छा आ गयी। उसी समय एक आदमी को भेजकर शत्रुघ्न को बुलवाया और कहा—भाई, आज का दिन बड़ा शुभ है कि हमारे भाई साहब चौदह वर्ष के देश निकाले के बाद अयोध्या आ रहे हैं। नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि लोग अपनेअपने घर दीप जलायें और इस परसन्नता में उत्सव मनावें। सवेरे तुम उनके उत्सव का परबन्ध करके यहां आना। हम सब लोग भाई साहब की अगवानी करने चलेंगे।

दूसरे दिन सबेरे रामचन्द्र जी भरद्वाज मुनि के आश्रम से रवाना हुए। जिस अयोध्या की गोद में पले और खेले, उस अयोध्या के आज फिर दर्शन हुए। जब अयोध्या के बड़ेबड़े ऐश्वर्यशाली परासाद दिखायी देने लगे, तो रामचन्द्र का मुख मारे परसन्नता के चमक उठा। उसके साथ ही आंखों से आंसू भी बहने लगे। हनुमान से बोले—मित्र, मुझे संसार में कोई स्थान अपनी अयोध्या से अधिक पिरय नहीं। मुझे यहां के कांटे भी दूसरी जगह के फूलों से अधिक सुन्दर मालूम होते हैं। वह देखो, सरयू नदी नगर को अपनी गोद में लिये कैसा बच्चों की तरह खिला रही है। यदि मुझे भिक्षुक बनकर भी यहां रहना पड़े तो दूसरी जगह राज्य करने से अधिक परसन्न रहूंगा। अभी वह यही बातें कर रहे थे कि नीचे हाथी, घोड़ों, रथों का जुलूस दिखायी दिया। सबके आगे भरत गेरुवे रंग की चादर ओ, जटा बाये, नंगे पांव एक हाथ में रामचन्द्र की खड़ाऊं लिये चले आ रहे थे। उनके पीछे शत्रुघ्न थे। पालकियों में कौशिल्या, सुमित्रा और कैकेयी थीं। जुलूस के पीछे अयोध्या के लाखों आदमी अच्छेअच्छे कपड़े पहने चले आ रहे थे। जुलूस को देखते ही रामचन्द्र ने विमान को नीचे उतारा। नीचे के आदमियों को ऐसा मालूम हुआ कि कोई बड़ा पक्षी पर जोड़े उतर रहा है। कभी ऐसा विमान उनकी दृष्टि के सामने न आया था। किन्तु जब विमान नीचे उतर आया, लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि उस पर रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण और उनके नायक बैठे हुए हैं। जयजय की हर्षध्वनि से आकाश हिल उठा।

ज्योंही रामचन्द्र विमान से उतरे, भरत दौड़कर उनके चरणों से लिपट गये। उनके मुंह से शब्द न निकलता था। बस, आंखों से आंसू बह रहे थे। रामचन्द्र उन्हें उठाकर छाती से लगाना चाहते थे, किन्तु भरत उनके पैरों को न छोड़ते थे। कितना पवित्र दृश्य था! रामचन्द्र ने तो पिता की आज्ञा को मानकर वनवास लिया था, किन्तु भरत ने राज्य मिलने पर भी स्वीकार न किया, इसलिए कि वह समझते थे कि रामचन्द्र के रहते राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने राज्य ही नहीं छोड़ा, साधुओं का सा जीवन व्यतीत किया, क्योंकि कैकेयी ने उन्हीं के लिए रामचन्द्र को वनवास दिया था। वह साधुओं की तरह रहकर अपनी माता के अन्याय का बदला चुकाना चाहते

थे। रामचन्द्र ने बड़ी कठिनाई से उठाया और छाती से लगा लिया। फिर लक्ष्मण भी भरत से गले मिले। उधर सीता जी ने जाकर कौशिल्या और दूसरी माताओं के चरणों पर सिर झुकाया। कैकेयी रानी भी वहां उपस्थित थीं। तीनों सासों ने सीता को आशीर्वाद दिया। कैकेयी अब अपने किये पर लज्जित थीं। अब उनका हृदय रामचन्द्र और कौशिल्या की ओर से साफ हो गया था।

रामचन्द्र की राजगद्दी

आज रामचन्द्र के राज्याभिषेक का शुभ दिन है। सरयू के किनारे मैदान में एक विशाल तम्बू खड़ा है। उसकी चोबें, चांदी की हैं और रस्सियां रेशम की। बहुमूल्य गलीचे बिछे हुए हैं। तम्बू के बाहर सुन्दर गमले रखे हुए हैं। तम्बू की छत शीशे के बहुमूल्य सामानों से सजी हुई है। दूरदूर से ऋषिमुनि बुलाये गये हैं। दरबार के धनीमानी और परतिष्ठित राजे आदर से बैठे हैं। सामने एक सोने का जड़ाऊ सिंहासन रखा हुआ है।

एकाएक तोपें दगीं, सब लोग संभल गये। विदित हो गया कि श्रीरामचन्द्र राज भवन से रवाना हो गये। उनके सामने घंटा और शंख बजाया जा रहा था। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, सुगरीव इत्यादि पीछेपीछे चले आ रहे थे। रामचन्द्र ने आज राजसी पोशाक पहनी है और सीताजी के बनाव सिंगार की तो परशंसा ही नहीं हो सकती।

ज्योंही यह लोग तम्बू में पहुंचे, गुरु वशिष्ठ ने उन्हें हवनकुण्ड के सामने बैठाया। ब्राह्मण ने वेद मन्त्र पढ़ा आरम्भ कर दिया। हवन होने लगा। उधर राजमहल में मंगल के गीत गाये जाने लगे। हवन समाप्त होने पर गुरु वशिष्ठ ने रामचन्द्र के माथे पर केशर का तिलक लगा दिया। उसी समय तोपों ने सलामियां दागीं, धनिकों ने नजरें उपस्थिति कीं; कवीश्वरों ने कवित्त पढ़ा परारम्भ कर दिया। रामचन्द्र और सीताजी सिंहासन पर शोभायमान हो गये। विभीषण मोरछल झलने लगा। सुगरीव ने चोबदारों का काम संभाल लिया और हनुमान पंखा झलने लगे। निष्ठावान हनुमान की परसन्नता की थाह न थी। जिस राजकुमार को बहुत दिन पहले उन्होंने ऋष्यमूक पर्वत पर इधरउधर सीता की तलाश करते पाया था, आज उसी को सीता जी के साथ सिंहासन पर बैठे देख रहे थे। इन्हें उस उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचाने में उन्होंने कितना भाग लिया था, अभिमानपूर्ण गौरव से वह फूले न समाते थे।

भरत बड़ेबड़े थालों में मेवे, अनाज भरे बैठे हुए थे। रुपयों कार उनके सामने लगा था। ज्योंही रामचन्द्र और सीता सिंहासन पर बैठे, भरत ने दान देना परारम्भ कर दिया। उन चौदह वर्षों में उन्होंने बचत करके राजकोष में जो कुछ एकत्रित किया था, वह सब किसी न किसी रूप में फिर परजा के पास पहुंच गया। निर्धनों को भी अशर्फियों की सूरत दिखायी दे गयी। नंगों को शालदुशाले पराप्त हो गये और भूखों को मेवों और मिठाइयों से सन्तुष्टि हो गयी। चारों तरफ भरत की दानशीलता की धूम मच गयी। सारे राज्य में कोई निर्धन न रह गया। किसानों के साथ विशेष छूट की गयी। एक साल का लगान माफ कर दिया गया। जहगजगह कुएं खोदवा दिये गये। बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। केवल वही मुक्त न किये गये जो छल और कपट के अभियुक्त थे। धनिकों और परतिष्ठितों को पदवियां दी गयीं और थैलियां बांटी गयीं।

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

रामचर्चा प्रेमचंद

[अनुक्रम](#)

अध्याय 7

[पीछे](#)

राम का राज्य

राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त होने के उपरांत सुग्रीव, विभीषण अंगद इत्यादि तो विदा हुए, किन्तु हनुमान को रामचन्द्र से इतना परेम हो गया था कि वह उन्हें छोड़कर जाने पर सहमत न हुए। लक्ष्मण, भरत इत्यादि ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु वह अयोध्या से न गये। उनका सारा जीवन रामचन्द्र के साथ ही समाप्त हुआ। वह सदैव रामचन्द्र की सेवा करने को तैयार रहते थे। बड़े से बड़ा कठिन काम देखकर भी उनका साहस मन्द न होता था।

रामचन्द्र के समय में अयोध्या के राज्य की इतनी उन्नति हुई, परजा इतनी परसन्न थी कि 'रामराज्य' एक कहावत हो गयी है। जब किसी समय की बहुत परशंसा करनी होती है, तो उसे 'रामराज्य' कहते हैं। उस समय में छोटेबड़े सब परसन्न थे, इसीलिए कोई चोरी न करता था। शिक्षा अनिवार्य थी, बड़ेबड़े ऋषि लड़कों को पढ़ाते थे, इसीलिए अनुचित कर्म न होते थे। विद्वान लोग न्याय करते थे इसलिए झूठी गवाहियां न बनायी जाती थीं। किसानों पर सख्ती न की जाती थी, इसलिए वह मन लगाकर खेती करते थे। अनाज बहुतायत से पैदा होता था। हर एक गांव में कुएँ और तालाब खुदवा दिये गये थे, नहरें बनवा दी गयी थीं, इसलिए किसान लोग आकाशवर्षा पर ही निर्भर न रहते थे। सफाई का बहुत अच्छा परबन्ध था। खानेपीने की चीजों की कमी न थी। दूधघी विपुलता से पैदा होता था, क्योंकि हर एक गांव में साफ चरागाहें थीं, इसलिए देश में बीमारियां न थीं। प्लेग, हैजा, चेचक इत्यादि बीमारियों के नाम भी कोई न जानता था। स्वस्थ रहने के कारण सभी सुन्दर थे। कुरूप आदमी कठिनाई से मिलता था, क्योंकि स्वास्थ्य ही सुन्दरता का भेद है। युवा मृत्युएं बहुत कम होती थीं, इसलिए अपनी पूरी आयु तक जीते थे। गलीगली अनाथालय न थे, इसलिए कि देश में अनाथ और विधवायें थीं ही नहीं।

उस समय में आदमी की परतिष्ठा उसके धन या परसिद्धि के अनुसार न की जाती थी, बल्कि धर्म और ज्ञान के अनुसार। धनिक लोग निर्धनों का रक्त चूसने की चिन्ता में न रहते थे, न निर्धन लोग धनिकों को धोखा देते थे। धर्म और कर्तव्य की तुलना में स्वार्थ और परयोजन को लोग तुच्छ समझते थे। रामचन्द्र परजा को अपने लड़के की तरह मानते थे। परजा भी उन्हें अपना पिता समझती थी। घरघर यज्ञ और हवन होता था।

रामचन्द्र केवल अपने परामर्शदाताओं ही की बातें न सुनते थे। वह स्वयं भी परायः वेश बदलकर अयोध्या और राज्य के दूसरे नगरों में घूमते रहते थे। वह चाहते थे कि परजा का ठीकठीक समाचार उन्हें मिलता रहे। ज्योंही वह किसी सरकारी पदाधिकारी की बुराई सुनते, तुरन्त उससे उत्तर मांगते और कड़ा दण्ड देते। सम्भव न था कि

परजा पर कोई अत्याचार करे और रामचन्द्र को उसकी सूचना न मिले। जिस ब्राह्मण को धन की ओर झुकते देखते, तुरन्त उसका नाम वैश्यों में लिखा देते। उनके राज्य में यह सम्भव न था कि कोई तो धन और परतिष्ठा दोनों ही लूटे, और कोई दोनों में से एक भी न पाये।

कई साल इसी तरह बीत गये। एक दिन रामचन्द्र रात को अयोध्या की गलियों में वेश बदले घूम रहे थे कि एक धोबी के घर में झगड़े की आवाज सुनकर वे रुक गये और कान लगाकर सुनने लगे। ज्ञात हुआ कि धोबिन आधी रात को बाहर से लौटी है और उसका पति उससे पूछ रहा है कि तू इतनी रात तक कहां रही। स्त्री कह रही थी, यहीं पड़ोस में तो काम से गयी थी। क्या कैदी बनकर तेरे घर में रहूँ? इस पर पति ने कहा—मेरे पास रहेगी तो तुझे कैदी बनकर ही रहना पड़ेगा, नहीं कोई दूसरा घर ढूँढ़ ले। मैं राजा नहीं हूँ कि तू चाहे जो अवगुण करे, उस पर पर्दा पड़ जाय। यहां तो तनिक भी ऐसीवैसी बात हुई तो विरादरी से निकाल दिया जाऊंगा। हुक्कापानी बन्द हो जायगा। विरादरी को भोज देना पड़ जायगा। इतना किसके घर से लाऊंगा। तुझे अगर सैरसपाटा करना है, तो मेरे घर से चली जा। इतना सुनना था कि रामचन्द्र के होश उड़ गये। ऐसा मालूम हुआ कि जमीन नीचे धंसी जा रही है। ऐसेऐसे छोटे आदमी भी मेरी बुराई कर रहे हैं! मैं अपनी परजा की दृष्टि में इतना गिर गया हूँ! जब एक धोबी के दिल में ऐसे विचार पैदा हो रहे हैं तो भले आदमी शायद मेरा छुआ पानी भी न पियें। उसी समय रामचन्द्र घर की ओर चले और सारी रात इसी बात पर विचार करते रहे। कुछ बुद्धि काम न करती थी कि क्या करना चाहिए! इसके सिवा कोई युक्ति न थी कि सीता जी को अपने पास से अलग कर दें। किन्तु इस पवित्रता की देवी के साथ इतनी निर्दयता करते हुए उन्हें आत्मिक दुःख हो रहा था।

सबरे रामचन्द्र ने तीनों भाइयों को बुलवाया और रात की घटना की चर्चा करके उनकी सलाह पूरी। लक्ष्मण ने कहा—उस नीच धोबी को फांसी दे देनी चाहिए, जिसमें कि फिर किसी को ऐसी बुराई करने का साहस न हो।

शत्रुघ्न ने कहा—उसे राज्य से निकाल दिया जाय। उसकी बदजवानी की यही सजा है।

भरत बोले—बकने दीजिए। इन नीच आदमियों के बकने से होता ही क्या है। सीता से अधिक पवित्र देवी संसार में तो क्या, देवलोक में भी न होगी।

लक्ष्मण ने जोश से कहा—आप क्या कहते हैं, भाई साहब! इन टके के आदमियों को इतना साहस कि सीता जी के विषय में ऐसा असन्तोष परकट करें? ऐसे आदमी को अवश्य फांसी देनी चाहिए। सीता जी ने अपनी पवित्रता का परमाणु उसी समय दे दिया जब वह चिता में कूदने को तैयार हो गयीं।

रामचन्द्र ने देर तक विचार में डूबे रहने के बाद सिर उठाया और बोले—आप लोगों ने सोचकर परामर्श नहीं दिया। क्रोध में आ गये। धोबी को मार डालने से हमारी बदनामी दूर न होगी, बल्कि और भी फैलेगी। बदनामी को दूर करने का केवल एक इलाज है, और वह है कि सीताजी का परित्याग कर दिया जाय। मैं जानता हूँ कि सीता लज्जा और पवित्रता की देवी हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उन्होंने स्वप्न में भी मेरे अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं किया, किन्तु मेरा विश्वास जब परजा के दिलों में विश्वास नहीं पैदा कर सकता, तो उससे लाभ ही क्या। मैं अपने वंश में कलंक लगते नहीं देख सकता। मेरा धर्म है कि परजा के सामने जीवन का ऐसा उदाहरण उपस्थित करूं जो समाज को और भी ऊंचा और पवित्र बनाये। यदि मैं ही लोकनिन्दा और बदनामी से न डरूंगा तो परजा इसकी कब परवाह करेगी और इस परकार जनसाधारण को सीधे और सच्चे मार्ग से हट जाना सरल हो जायगा। बदनामी से

ब्रकर हमारे जीवन को सुधारने की कोई दूसरी ताकत नहीं है। मैंने जो युक्ति बतलायी, उसके सिवाय और कोई दूसरी युक्ति नहीं है।

तीनों भाई रामचन्द्र का यह वार्तालाप सुनकर गुमसुग हो गये। कुछ जवाब न दे सके। हां, दिल में उनके बलिदान की परशंसा करने लगे। वह जानते हैं कि सीता जी निरपराध हैं, फिर भी समाज की भलाई के विचार से अपने हृदय पर इतना अत्याचार कर रहे हैं। कर्तव्य के सामने, परजा की भलाई के समाने इन्हें उसकी भी परवाह नहीं है, जो इन्हें दुनिया में सबसे पिरय है। शायद यह अपनी बुराई सुनकर इतनी ही तत्परता से अपनी जान दे देते।

रामचन्द्र ने एक क्षण के बाद फिर कहा—हां, इसके सिवा अब कोई दूसरी युक्ति नहीं है। आज मुझे एक धोबी से लज्जित होना पड़ रहा है मैं इसे सहन नहीं कर सकता। भैया लक्ष्मण, तुमने बड़े कठिन अवसरों पर मेरी सहायता की है यह काम भी तुम्हीं को करना होगा। मुझसे सीता से बात करने का साहस नहीं है, मैं उनके सामने जाने का साहस नहीं कर सकता। उनके सामने जाकर मैं अपने राष्ट्रीय कर्तव्य से हट जाऊंगा, इसलिए तुम आज ही सीता जी को किसी बहाने से लेकर चले जाओ। मैं जानता हूँ कि निर्दयता करते हुए तुम्हारा हृदय तुमको कोसेगा; किन्तु याद रखो, कर्तव्य का मार्ग कठिन है। जो आदमी तलवार की धार पर चल सके, वहीं कर्तव्य के रास्ते पर चल सकता है।

यह आज्ञा देकर रामचन्द्रजी दरबार में चले गये। लक्ष्मण जानते थे कि यदि आज रामचन्द्र की आज्ञा का पालन न किया गया तो वह अवश्य आत्महत्या कर लेंगे। वह अपनी बदनामी कदापि नहीं सह सकते। सीता जी के साथ छल करते हुए उनका हृदय उनको धिक्कार रहा था, किन्तु विवश थे। जाकर सीता जी से बोले—भाभी ! आप जंगलों की सैर का कई बार तकाजा कर चुकी हैं, मैं आज सैर करने जा रहा हूँ। चलिये, आपको भी लेता चलूँ।

बेचारी सीता क्या जानती थीं कि आज यह घर मुझसे सदैव के लिए छूट रहा है! मेरे स्वामी मुझे सदैव के लिए वनवास दे रहे हैं! बड़ी परसन्नता से चलने को तैयार हो गयीं। उसी समय रथ तैयार हुआ, लक्ष्मण और सीता उस पर बैठकर चले। सीता जी बहुत परसन्न थीं। हर एक नयी चीज को देखकर परश्न करने लगती थीं, यह क्या है, वह क्या चीज है? किन्तु लक्ष्मण इतने शोकग्रस्त थे कि हूँहां करके टाल देते थे। उनके मुँह से शब्द न निकलता था। बातें करते तो तुरंत पर्दा खुल जाता, क्योंकि उनकी आंखों में बारबार आंसू भर आते थे। आखिर रथ गंगा के किनारे जा पहुंचा।

सीताजी बोलीं—तो क्या हम लोग आज जंगलों ही में रहेंगे? शाम होने को आयी, अभी तो किसी ऋषिमुनि के आश्रम में भी नहीं गयी। लौटेंगे कब तक?

लक्ष्मण ने मुँह फेरे हुए उत्तर दिया—देखिये, कब तक लौटते हैं।

मांझी को ज्योंही रानी सीता के आने की सूचना मिली, वह राज्य की नाव खेता हुआ आया। सीता रथ से उतरकर नाव में जा बैठीं, और पानी से खेलने लगीं। जंगल की ताजी हवा ने उन्हें परफुल्लित कर दिया था।

सीतावनवास

नदी के पार पहुंचकर सीताजी की दृष्टि एकाएक लक्ष्मण के चेहरे पर पड़ी तो देखा कि उनकी आंखों से आंसू बह रहे हैं। वीर लक्ष्मण ने अब तक तो अपने को रोका था, पर अब आंसू न रुक सके। मैदान में तीरों को रोकना सरल है, आंसू को कौन वीर रोक सकता है !

सीताजी आश्चर्य से बोलीं—लक्ष्मण, तुम रो क्यों रहे हो? क्या आज वन को देखकर फिर बनवास के दिन याद आ रहे हैं ?

लक्ष्मण और भी फूटफूटकर रोते हुए सीता जी के पैरों पर गिर पड़े और बोले—नदी देवी! इसलिए कि आज मुझसे अधिक भाग्यहीन, निर्दय पुरुष संसार में नहीं। क्या ही अच्छा होता, मुझे मौत आ जाती। मेघनाद की शक्ति ही ने काम तमाम कर दिया होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता। जिस देवी के दर्शनों से जीवन पवित्र हो जाता है, उसे आज मैं वनवास देने आया हूं। हाय! सदैव के लिए !

सीताजी अब भी कुछ साफसाफ न समझ सकीं। घबराकर बोलीं—भैया, तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी तबीयत तो अच्छी है? आज तुम रास्ते पर उदास रहे। ज्वर तो नहीं हो आया ?

लक्ष्मण ने सीता जी के पैरों पर सिर रगड़ते हुए—माता! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं बिल्कुल निरपराध हूं। भाई साहब ने जो आज्ञा दी है, उसका पालन कर रहा हूं। शायद इसी दिन के लिए मैं अब तक जीवित था। मुझसे ईश्वर को यही अधिक का काम लेना था। हाय!

सीता जी अब पूरी परिस्थिति समझ गयीं। अभिमान से गर्दन उठाकर बोलीं—तो क्या स्वामी जी ने मुझे वनवास दे दिया है ? मेरा कोई अपराध, कोई दोष ? अभी रात को नगर में भ्रमण करने के पहले वह मेरे ही पास थे। उनके चेहरे पर क्रोध का निशान तक न था। फिर क्या बात हो गई ? साफसाफ कहो, मैं सुनना चाहती हूं ! और अगर सुनने वाला हो तो उसका उत्तर भी देना चाहती हूं।

लक्ष्मण ने अभियुक्तों की तरह सिर झुकाकर कहा—माता! क्या बतलाऊं, ऐसी बात है जो मेरे मुंह से निकल नहीं सकती। अयोध्या में आपके बारे में लोग भिन्नभिन्न परकार की बात कह रहे हैं। भाई साहब को आप जानती हैं, बदनामी से कितना डरते हैं। और मैं आपसे क्या कहूं।

सीता जी की आंखों में न आंसू थे, न घबराहट, वह चुपचाप टकटकी लगाये गंगा की ओर देख रही थीं, फिर बोलीं—क्या स्वामी को भी मुझ पर संदेह है?

लक्ष्मण ने जबान को दांतों से दबाकर कहा—नहीं भाभी जी, कदापि नहीं। उन्हें आपके ऊपर कण बराबर भी सन्देह नहीं है। उन्हें आपकी पवित्रता का उतना ही विश्वास है, जितना अपने अस्तित्व का। यह विश्वास किसी परकार नहीं मिट सकता, चाहे सारी दुनिया आप पर उंगली उठाये। किन्तु जनसाधारण की जबान को वह कैसे रोक सकते हैं। उनके दिल में आपका जितना परेम है, वह मैं देख चुका हूं। जिस समय उन्होंने मुझे यह आज्ञा दी है, उनका चेहरा पीला पड़ गया था, आंखों से आंसू बह रहे थे; ऐसा परतीत हो रहा था कि कोई उनके सीने के अन्दर बैठा हुआ छुरियां मार रहा है। बदनामी के सिवा उन्हें कोई विचार नहीं है, न हो सकता है।

सीता जी की आंखों से आंसू की दो बड़ीबड़ी बूंदें टपटप गिर पड़ीं। किन्तु उन्होंने अपने को संभाला और बोलीं—
 प्यारे लक्ष्मण, अगर यह स्वामी का आदेश है तो मैं उनके सामने सिर झुकाती हूँ। मैं उन्हें कुछ नहीं कहती। मेरे लिए यही विचार पर्याप्त है कि उनका हृदय मेरी ओर से साफ है। मैं और किसी बात की चिन्ता नहीं करती। तुम न रोओ भैया, तुम्हारा कोई दोष नहीं, तुम क्या कर सकते हो। मैं मरकर भी तुम्हारे उपकारों को नहीं भूल सकती। यह सब बुरे कर्मों का फल है, नहीं तो जिस आदमी ने कभी किसी जानवर के साथ भी अन्याय नहीं किया, जो शील और दया का देवता है, जिसकी एकएक बात मेरे हृदय में परेम की लहरें पैदा कर देती थी, उसके हाथों मेरी यह दुर्गति होती? जिसके लिए मैंने चौदह साल रोरकर काटे, वह आज मुझे त्याग देता? यह सब मेरे छोटे कर्मों का भोग है। तुम्हारा कोई दोष नहीं। किन्तु तुम्हीं दिल में सोचो, क्या मेरे साथ यह न्याय हुआ है? क्या बदनामी से बचने के लिए किसी निर्दोष की हत्या कर देना न्याय है? अब और कुछ न कहूँगी भैया, इस शोक और क्रोध की दशा में संभव है मुंह से कोई ऐसा शब्द निकल जाय, जो न निकलना चाहिए। ओह! कैसे सहन करूं? ऐसा जी चाहता है कि इसी समय जाकर गंगा में डूब मरूं! हाय! कैसे दिल को समझाऊं? किस आशा पर जीवित रहूं; किसलिए जीवित रहूं? यह पहाड़सा जीवन क्या रोरकर काटूं? स्त्री क्या परेम के बिना जीवित रह सकती है? कदापि नहीं। सीता आज से मर गयी।

गंगा के किनारे के लम्बेलम्बे वृक्ष सिर धुन रहे थे। गंगा की लहरें मानो रो रही थीं ! अधेरा भयानक आकृति धारण किये दौड़ा चला आता था। लक्ष्मण पत्थर की मूर्ति बने; निश्चल खड़े थे मानो शरीर में पराण ही नहीं। सीता दोतीन मिनट तक किसी विचार में डूबी रही, फिर बोलीं—नहीं वीर लक्ष्मण; अभी जान न दूंगी। मुझे अभी एक बहुत बड़ा कर्तव्य पूरा करना है। अपने बच्चे के लिए जिऊंगी। वह तुम्हारे भाई की थाती है। उसे उनको सौंपकर ही मेरा कर्तव्य पूरा होगा। अब वही मेरे जीवन का आधार होगा। स्वामी नहीं हैं, तो उनकी स्मृति ही से हृदय को आश्वासन दूंगी! मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। अपने भाई से कह देना, मेरे हृदय में उनकी ओर से कोई दुर्भावना नहीं है। जब तक जिऊंगी, उनके परेम को याद करती रहूंगी। भैया! हृदय बहुत दुर्बल हो रहा है। कितना ही रोकती हूँ, पर रहा नहीं जाता। मेरी समझ में नहीं आता कि जब इस तपोवन के ऋषिमुनि मुझसे पूछेंगे; तेरे स्वामी ने तुझे क्यों वनवास दिया है; तो क्या कहूंगी। कम से कम तुम्हारे भाई साहब को इतना तो बतला ही देना चाहिए था। ईश्वर की भी कैसी विचित्र लीला है कि वह कुछ आदमियों को केवल रोने के लिए पैदा करता है। एक बार के आंसू अभी सूखने भी न पाये थे कि रोने का यह नया सामान पैदा हो गया। हाय! इन्हीं जंगलों में जीवन के कितने दिन आराम से व्यतीत हुए हैं। किन्तु अब रोना है और सदैव के लिए रोना है। भैया, तुम अब जाओ। मेरा विलाप कब तक सुनते रहोगे ! यह तो जीवन भर समाप्त न होगा। माताओं से मेरा नमस्कार कह देना! मुझसे जो कुछ अशिष्टता हुई हो उसे क्षमा करें। हां, मेरे पाले हुए हिरन के बच्चों की खोजखबर लेते रहना। पिंजरे में मेरा हिरामन तोता पड़ा हुआ है। उसके दानेपानी का ध्यान रखना। और क्या कहूं ! ईश्वर तुम्हें सदैव कुशल से रखे। मेरे रोनेधोने की चचार अपने भाई साहब से न करना। नहीं शायद उन्हें दुःख हो। तुम जाओ। अंधेरा हुआ जाता है। अभी तुम्हें बहुत दूर जाना है।

लक्ष्मण यहां से चले, तो उन्हें ऐसा परतीत हो रहा था कि हृदय के अन्दर आगसी जल रही है। यह जी चाहता था कि सीता जी के साथ रह कर सारा जीवन उनकी सेवा करता रहूं। पगपग, मुड़मुड़कर सीता जी को देख लेते थे। वह अब तक वहीं सिर झुकाये बैठी हुई थीं। जब अंधेरे ने उन्हें अपने पर्दे में छिपा लिया तो लक्ष्मण भूमि पर बैठ गये और बड़ी देर तक फूटफूटकर रोते रहे। एकाएक निराशा में एक आशा की किरण दिखायी दी! शायद रामचन्द्र ने इस परश्न पर फिर विचार किया हो और वह सीता जी को वापस लेने को तैयार हों। शायद वह फिर उन्हें कल ही

यह आज्ञा दें कि जाकर सीता को लिवा लाओ। इस आशा ने खिन्न और निराश लक्ष्मण को बड़ी सान्त्वना दी। वह वेग से पग उठाते हुए नौका की ओर चले।

लव और कुश

जहां सीता जी निराश और शोक में डूबी हुई रो रही थीं, उसके थोड़ी ही दूर पर ऋषि वाल्मीकि का आश्रम था। उस समय ऋषि सन्ध्या करने के लिए गंगा की ओर जाया करते थे ! आज भी वह जब नियमानुसार चले तो मार्ग में किसी स्त्री के सिसकने की आवाज कान में आयी! आश्चर्य हुआ कि इस समय कौन स्त्री रो रही है। समझे, शायद कोई लकड़ी बटोरने वाली औरत रास्ता भूल गयी हो! सिसकियों की आहट लेते हुए निकट आये तो देखा कि एक स्त्री बहुमूल्य कपड़े और आभूषण पहने अकेली रो रही है। पूछा—बेटी, तू कौन है और यहां बैठी क्यों रो रही है ?

सीता ऋषि वाल्मीकि को पहचानती थीं। उन्हें देखते ही उठकर उनके चरणों से लिपट गयीं और बोलीं—भगवन ! मैं अयोध्या की अभागिनी रानी सीता हूं। स्वामी ने बदनामी के डर से मुझे त्याग दिया है! लक्ष्मण मुझे यहां छोड़ गये हैं।

वाल्मीकि ने परेम से सीता को अपने पैरों से उठा लिया और बोले—बेटी, अपने को अभागिनी न कहो। तुम उस राजा की बेटी हो, जिसके उपदेश से हमने ज्ञान सीखा है। तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे। जब तक मैं जीता हूं, यहां तुम्हें किसी बात का कष्ट न होगा। चलकर मेरे आश्रम में रहो। रामचन्द्र ने तुम्हारी पवित्रता पर विश्वास रखते हुए भी केवल बदनामी के डर से त्याग दिया, यह उनका अन्याय है। लेकिन इसका शोक न करो। सबसे सुखी वही आदमी है, जो सदैव परत्येक दशा में अपने कर्तव्य को पूरा करता रहे। यह बड़े सौंदर्य की जगह है यहां तुम्हारी तबीयत खुश होगी। ऋषियों की लड़कियों के साथ रहकर तुम अपने सब दुःख भूल जाओगी। राजमहल में तुम्हें वही चीजें मिल सकती थीं, जिनसे शरीर को आराम पहुंचता है, यहां तुम्हें वह चीजें मिलेंगी, जिनसे आत्मा को शान्ति और आराम पराप्त होता है उठो, मेरे साथ चलो। क्या ही अच्छा होता, यदि मुझे पहले मालूम हो जाता, तो तुम्हें इतना कष्ट न होता।

सीता जी को ऋषि वाल्मीकि की इन बातों से बड़ा सन्तोष हुआ। उठकर उनके साथ उनकी कुटिया में आईं। वहां और भी कई ऋषियों की कुटियां थीं। सीता उनकी स्त्रियों और लड़कियों के साथ रहने लगीं। इस परकार कई महीने के बाद उनके दो बच्चे पैदा हुए। ऋषि वाल्मीकि ने बड़े का नाम लव और छोटे का नाम कुश रखा। दोनों ही बच्चे रामचन्द्र से बहुत मिलते थे। जहीन और तेज इतने थे कि जो बात एक बार सुन लेते, सदैव के लिए हृदय पर अंकित हो जाती। वह अपनी भोलीभाली तोतली बातों से सीता को हर्षित किया करते थे। ऋषि वाल्मीकि दोनों बच्चों को बहुत प्यार करते थे। इन दोनों बच्चों के पालनेपोसने में सीता अपना शोक भूल गयीं।

जब दोनों बच्चे जरा बड़े हुए तो ऋषि वाल्मीकि ने उन्हें पृना परारम्भ किया। अपने साथ वन में ले जाते और नाना परकार के फलफूल दिखाते। बचपन ही से सबसे परेम और झूठ से घृणा करना सिखाया। युद्ध की कला भी खूब मन लगाकर सिखाई। दोनों इतने वीर थे कि बड़ेबड़े भयानक जानवरों को भी मार गिराते थे। उनका गला बहुत अच्छा था। उनका गाना सुनकर ऋषि लोग भी मस्त हो जाते थे। वाल्मीकि ने रामचन्द्र के जीवन का वृत्तान्त पद्य में लिखकर दोनों राजकुमारों को याद करा दिया था। जब दोनों गागाकर सुनाते, तो सीता जी अभिमान और गौरव की लहरों में बहने लगती थीं।

अश्वमेध यज्ञ

सीता को त्याग देने के बाद रामचन्द्र बहुत दुःखित और शोकाकुल रहने लगे। सीता की याद हमेशा उन्हें सताती रहती थी। सोचते, बेचारी न जाने कहां होगी, न जाने उस पर क्या बीत रही होगी ! उस समय को याद करके जो उन्होंने सीता जी के साथ व्यतीत किया था, वह परायः रone लगते थे। घर की हर एक चीज उन्हें सीता की याद दिला देती थी। उनके कमरे की तस्वीरें सीता जी की बनायी हुई थीं। बाग के कितने ही पौधे सीताजी के हाथों के लगाये हुए थे। सीता के स्वयंवर के समय की याद करते, कभी सीता के साथ जंगलों के जीवन का विचार करते। उन बातों को याद करके वह तड़पने लगते। आनंदोत्सवों में सम्मिलित होना उन्होंने बिल्कुल छोड़ दिया। बिल्कुल तपस्वियों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे। दरबार के सभासदों और मंत्रियों ने समझाया कि आप दूसरा विवाह कर लें। किसी परकार नाम तो चले। कब तक इस परकार तपस्या कीजियेगा? किन्तु रामचन्द्र विवाह करने पर सहमत न हुए। यहां तक कि कई साल बीत गये।

उस समय कई परकार के यज्ञ होते थे। उसी में एक अश्वमेद्य यज्ञ भी था। अश्व घोड़े को कहते हैं। जो राजा यह आकांक्षा रखता था कि वह सारे देश का महाराजा हो जाय और सभी राजे उसके आज्ञापालक बन जायें, वह एक घोड़े को छोड़ देता था। घोड़ा चारों ओर घूमता था। यदि कोई राजा उस घोड़े को पकड़ लेता था, तो इसके अर्थ यह होते थे कि उसे सेवक बनना स्वीकार नहीं। तब युद्ध से इसका निर्णय होता था। राजा रामचन्द्र का बल और साम्राज्य इतना ब्र गया कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। दूरदूर के राजाओं, महर्षियों, विद्वानों के पास नवेद भेजे गये। सुगरीव, विभीषण, अंगद सब उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आ पहुंचे। ऋषि वाल्मीकि को भी नवेद मिला। वह लव और कुश के साथ आ गये। यज्ञ की बड़ी धूमधाम से तैयारियां होने लगीं। अतिथियों के मनबहलाव के लिए नाना परकार के आयोजन किये गये थे। कहीं पहलवानों के दंगल थे, कहीं रागरंग की सभायें। किन्तु जो आनन्द लोगों को लव और कुश के मुंह से रामचन्द्र की चचार सुनने में आता था वह और किसी बात में न आता था। दोनों लड़के सुर मिलाकर इतने पिरयभाव से यह काव्य गाते थे कि सुनने वाले मोहित हो जाते थे। चारों ओर उनकी वाहवाह मची हुई थी। धीरेधीरे रानियों को भी उनका गाना सुनने का शौक पैदा हुआ। एक आदमी दोनों बरहमचारियों को रानिवास में ले गया। यहां तीन बड़ी रानियां, उनकी तीनों बहुएं और बहुतसी स्त्रियां बैठी हुई थीं। रामचन्द्र भी उपस्थित थे। इन लड़कों के लंबेलंबे केश, वन की स्वास्थ्यकर हवा से निखरा हुआ लाल रंग और सुन्दर मुखमण्डल देखकर सबके-सब दंग हो गये। दोनों की सूरत रामचन्द्र से बहुत मिलती थी। वही ऊंचा ललाट था, वही लंबी नाक, वही चौड़ा वक्ष। वन में ऐसे लड़के कहां से आ गये, सबको यही आश्चर्य हो रहा था। कौशिल्या मन में सोच रही थीं कि रामचन्द्र के लड़के होते तो वह भी ऐसे ही होते। जब लड़कों ने कवित्त गाना परारम्भ किया, तो सबकी आंखों से आंसू बहने शुरू हो गये। लड़कों का सुर जितना प्यारा था, उतनी ही प्यारी और दिल को हिला देने वाली कविता थी। गाना सुनने के बाद रामचन्द्र ने बहुत चाहा कि उन लड़कों को कुछ पुरस्कार दें, किन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया। आखिर उन्होंने पूछा—तुम दोनों को गाना किसने सिखाया और तुम कहां रहते हो ?

लव ने कहा—हम लोग ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हैं उन्होंने हमें गाना सिखाया है।

रामचन्द्र ने फिर पूछा—और यह कविता किसने बनायी?

लव ने उत्तर दिया—ऋषि वाल्मीकि ने ही यह कविता भी बनायी है।

रामचन्द्र को उन दोनों लड़कों से इतना परेम हो गया था कि वह उसी समय ऋषि वाल्मीकि के पास गये और उनसे कहा—महाराज! आपसे एक परश्न करने आया हूं, दया कीजियेगा।

ऋषि ने मुस्कराकर कहा—राजा रंक से परश्न करने आया है? आश्चर्य है। कहिये।

रामचन्द्र ने कहा—मैं चाहता हूं कि इन दोनों लड़कों को, जिन्होंने आपके रचे हुएपद सुनाये हैं, अपने पास रख लूं। मेरे अंधेरे घर के दीपक होंगे। हैं तो किसी अच्छे वंश के लड़के?

वाल्मीकि ने कहा—हां, बहुत उच्च वंश के हैं। ऐसा वंश भारत में दूसरा नहीं है।

राम—तब तो और भी अच्छा है। मेरे बाद वही मेरे उत्तराधिकारी होंगे। उनके मातापिता को इसमें कोई आपत्ति तो न होगी?

वाल्मीकि—कह नहीं सकता। सम्भव है आपत्ति हो पिता को तो लेशमात्र भी न होगी, किन्तु माता के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। अपनी मयार्दा पर जान देने वाली स्त्री है।

राम—यदि आप उसे देवी को किसी परकार सम्मत कर सकें तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी।

वाल्मीकि—चेष्टा करूंगा। मैंने ऐसी सज्जन, लज्जाशीला और सती स्त्री नहीं देखी। यद्यपि उसके पति ने उसे निरपराध, अकारण त्याग दिया है, किन्तु यह सदैव उसी पति की पूजा करती है।

रामचन्द्र की छाती धड़कने लगी। कहीं यह मेरी सीता न हो। आह दैव, यह लड़के मेरे होते! तब तो भाग्य ही खुल जाता।

वाल्मीकि फिर बोले—बेटा, अब तो तुम समझ गये होगे कि मैं किस ओर संकेत कर रहा हूं।

रामचन्द्र का चेहरा आनन्द से खिल गया। बोले—हां, महाराज, समझ गया।

वाल्मीकि—जब से तुमने सीता को त्याग दिया है वह मेरे ही आश्रम में है। मेरे आश्रम में आने के दोतीन महीने के बाद वह लड़के पैदा हुए थे। वह तुम्हारे लड़के हैं। उनका चेहरा आप कह रहा है। क्या अब भी तुम सीता को घर न लाओगे? तुमने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। मैं उस देवी को आज पन्द्रह सालों से देख रहा हूं। ऐसी पवित्र स्त्री संसार में कठिनाई से मिलेगी। तुम्हारे विरुद्ध कभी एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं सुना। तुम्हारी चचार सदैव आदर और परेम से करती है। उसकी दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। बहुत रुला चुके, अब उसे अपने घर लाओ। वह लक्ष्मी है।

रामचन्द्र बोले—मुनि जी, मुझे तो सीता पर किसी परकार का सन्देह कभी नहीं हुआ। मैं उनको अब भी पवित्र समझता हूं। किन्तु अपनी परजा को क्या करूं? उनकी जबान कैसे बन्द करूं? रामचन्द्र की पत्नी को सन्देह से पवित्र होना चाहिए। यदि सीता मेरी परजा को अपने विषय में विश्वास दिला दें, तो वह अब भी मेरी रानी बन सकती हैं। यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष की बात होगी।

वाल्मीकि ने तुरंत अपने दो चेलों को आदेश दिया कि जाकर सीता जी को साथ लाओ। रामचन्द्र ने उन्हें अपने पुष्पकविमान पर भेजा, जिनसे वह शीघ्र लौट आये। दोनों चले दूसरे दिन सीता जी को लेकर आ पहुंचे। सारे नगर में यह समाचार फैल गया था कि सीता जी आ रही हैं। राजभवन के सामने, यज्ञशाला के निकट लाखों आदमी एकत्रित थे। सीता जी के आने की खबर पाते ही रामचन्द्र भी भाइयों के साथ आ गये। एक क्षण में सीता जी भी आईं। वह बहुत दुबली हो गयी थीं, एक लाल साड़ी के अलावा उनके शरीर पर और कोई आभूषण न था। किन्तु उनके पीले मुरझाये हुए चेहरे से परकाश की किरणेंसी निकल रही थीं। वह सिर झुकाये हुए महर्षि वाल्मीकि के पीछेपीछे इस समूह के बीच में खड़ी हो गयीं।

महर्षि एक कुश के आसान पर बैठ गये और बड़े दृढ़ भाव से बोले—देवी ! तेरे पति वह सामने बैठे हुए हैं। अयोध्या के लोग चारों ओर खड़े हैं। तू लज्जा और झिझक को छोड़कर अपने पवित्र और निर्मल होने का परमाणु इन लोगों को दे और इनके मन से संदेह को दूर कर।

सीता का पीला चेहरा लाल हो गया। उन्होंने भीड़ को उड़ती हुई दृष्टि से देखा, फिर आकाश की ओर देखकर बोलीं—ईश्वर! इस समय मुझे निरपराध सिद्ध करना तुम्हारी ही दया का काम है। तुम्हीं आदमियों के हृदयों में इस संदेह को दूर कर सकते हो। मैं तुम्हीं से विनती करती हूं! तुम सबके दिलों का हाल जानते हो। तुम अन्तयार्मी हो। यदि मैंने सदैव परकट और गुप्त रूप में अपने पति की पूजा न की हो, यदि मैंने अपने पति के साथ अपने कर्तव्य को पूर्ण न किया हो, यदि मैं पवित्र और निष्कलंक न हूं, तो तुम इसी समय मुझे इस संसार से उठा लो। यही मेरी निर्मलता का परमाणु होगा।

अंतिम शब्द मुंह से निकलते ही सीता भूमि पर गिर पड़ी। रामचन्द्र घबराये हुए उनके पास गये, पर वहां अब क्या था? देवी की आत्मा ईश्वर के पास पहुंच चुकी थी। सीता जी निरंतर शोक में घुलतेघुलते योंही मृतपराय हो रही थीं, इतने बड़े जनसमूह के सम्मुख अपनी पवित्रता का परमाणु देना इतना बड़ा दुःख था, जो वह सहन न कर सकती थीं। चारों ओर कुहराम मच गया।

सब लोग फूटफूटकर रोने लगे। सबके जबान पर यही शब्द थे—‘यह सचमुच लक्ष्मी थी, फिर ऐसी स्त्री न पैदा होगी।’ कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा छाती पीटने लगीं और रामचन्द्र तो मूर्छित होकर गिर पड़े। जब बड़ी कठिनता से उन्हें चेतना आयी तो रोते हुए बोले—मेरी लक्ष्मी, मेरी प्यारी सीता! जा, स्वर्ग की देवियां तेरे चरणों पर सिर झुकाने के लिए खड़ी हैं। यह संसार तेरे रहने के योग्य न था। मुझ जैसा बलहीन पुरुष तेरा पति बनने के योग्य न था। मुझ पर दया कर, मुझे क्षमा कर। मैं भी शीघ्र तेरे पास आता हूं। मेरी यही ईश्वर से परार्थना है कि यदि मैंने कभी किसी पराई स्त्री का स्वप्न में ध्यान किया हो, यदि मैंने सदैव तुझे देवी की तरह हृदय में न पूजा हो, यदि मेरे हृदय में कभी तेरी ओर से सन्देह हुआ हो, तो पतिव्रता स्त्रियों में तेरा नाम सबसे ब्रकर हो। आने वाली पीढ़ियां सदैव आदर से तेरे नाम की पूजा करें। भारत की देवियां सदैव तेरे यश के गीत गाएँ।

अश्वमेदयज्ञ कुशल से समाप्त हुआ। रामचन्द्र भारतवर्ष के सबसे बड़े महाराज मान लिये गये। दो योग्य, वीर और बुद्धिमान पुत्र भी उनके थे। सारे देश में कोई शत्रु न था। परजा उन पर जान देती थी। किसी बात की कमी न थी। किन्तु उस दिन से उनके होंठों पर हंसी नहीं आयी। शोकाकुल तो वह पहले भी रहा करते थे, अब जीवन उन्हें भार परतीत होने लगा। राजकाज में तनिक भी जी न लगता। बस यही जी चाहता कि किसी सुनसान जगह में

जाकर ईश्वर को याद करें। शोक और खेद से बेचैन हृदय को ईश्वर के अतिरिक्त और कौन सान्त्वना दे सकता था !

लक्ष्मण की मृत्यु

किन्तु अभी रामचन्द्र की विपत्तियों का अन्त न हुआ था। उन पर एक बड़ी बिजली और गिरने वाली थी। एक दिन एक साधु उनसे मिलने आया और बोला—मैं आपसे अकेले में कुछ कहना चाहता हूँ। जब तक मैं बातें करता रहूँ, कोई दूसरा कमरे में न आने पाये। रामचन्द्र महात्माओं का बड़ा सम्मान करते थे। इस विचार से कि किसी साधारण द्वारपाल को द्वार पर बैठा दूंगा तो सम्भव है कि वह किसी बड़े धनीमानी को अन्दर आने से रोक न सके, उन्होंने लक्ष्मण को द्वार पर बैठा दिया और चेतावनी दे दी कि सावधान रहना, कोई अंदर न आने पाये। यह कहकर रामचन्द्र उस साधु से कमरे में बातें करने लगे। संयोग से उसी समय दुवार्सा ऋषि आ पहुंचे और रामचन्द्र से मिलने की इच्छा परकट की। लक्ष्मण ने कहा—अभी तो महाराज एक महात्मा से बातें कर रहे हैं। आप तनिक ठहर जायं तो मैं मिला दूंगा। दुवार्सा अत्यन्त क्रोधी थे। क्रोध उनकी नाक पर रहता था। बोले—मुझे अवकाश नहीं है। मैं इसी समय रामचन्द्र से मिलूंगा। यदि तुम मुझे अंदर जाने से रोकोगे तो तुम्हें ऐसा शाप दे दूंगा कि तुम्हारे वंश का सत्यानाश हो जायगा।

बेचारे लक्ष्मण बड़ी दुविधा में पड़े। यदि दुवार्सा को अंदर जाने देते हैं तो रामचन्द्र अपरसन्न होते हैं, नहीं जाने देते तो भयानक शाप मिलता है। आखिर उन्हें रामचन्द्र की अपरसन्नता ही अधिक सरल परतीत हुई। दुवार्सा को अंदर जाने की अनुमति दे दी। दुवार्सा अंदर पहुंचे। उन्हें देखते ही वह साधु बहुत बिगड़ा और रामचन्द्र को सख्तसुस्त कहता चला गया। दुवार्सा भी आवश्यक बातें करके चले गये। किन्तु रामचन्द्र को लक्ष्मण का यह कार्य बहुत बुरा मालूम हुआ। बाहर आते ही लक्ष्मण से पूछा—जब मैंने तुमसे आग्रहपूर्वक कह दिया था तो तुमने दुवार्सा को क्यों अंदर जाने दिया? केवल इस भय से कि दुवार्सा तुम्हें शाप दे देते।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर कहा—महाराज! मैं क्या करता। वह बड़ा भयानक शाप देने की धमकी दे रहे थे।

राम—तो तुमने एक साधु के शाप के सामने राजा की आज्ञा की चिंता नहीं की। सोचो, यह उचित था? मैं राजा पहले हूँ—भाई, पति, पुत्र या पति पीछे। तुमने अपने बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध काम नहीं किया है, बल्कि तुमने अपने राजा की आज्ञा तोड़ी है। इस दण्ड से तुम किसी परकार नहीं बच सकते। यदि तुम्हारे स्थान पर कोई द्वारपाल होता तो तुम समझते हो, मैं उसे क्या दण्ड देता? मैं उस पर जुमाना करता। लेकिन तुम इतने समझदार, उत्तरदायित्व के ज्ञान से इतने पूर्ण हो, इसलिए वह अपराध और भी बड़ा हो गया है और उसका दण्ड भी बड़ा होना चाहिए। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि आज ही अयोध्या का राज्य छोड़कर निकल जाओ। न्याय सबके लिए एक है। वह पक्षपात नहीं जानता।

यह था रामचन्द्र की कर्तव्यपरायणता का उदाहरण! जिस निर्दयता से कर्तव्य के लिए पराणों से पिरय अपनी पत्नी को त्याग दिया उसी निर्दयता से अपने पराणों से प्यारे भाई को भी त्याग दिया। लक्ष्मण ने कोई आपत्ति नहीं की। आपत्ति के लिए स्थान ही न था। उसी समय बिना किसी से कुछ कहेसुने राजमहल के बाहर चले गये और सरयू के किनारे पहुंचकर जान दे दी।

अन्त

रामचन्द्र को लक्ष्मण के मरने का समाचार मिला तो मानो सिर पर पहाड़ टूट पड़ा। संसार में सीताजी के बाद उन्हें सबसे अधिक परेम लक्ष्मण से ही था। लक्ष्मण उनके दाहिने हाथ थे। कमर टूट गयी। कुछ दिन तक तो उन्होंने ज्योत्यों करके राज्य किया। आखिर एक दिन सामराज्य बेटों को देकर आप तीनों भाइयों के साथ जंगल में ईश्वर की उपासना करने चले गये।

यह है रामचन्द्र के जीवन की संक्षिप्त कहानी। उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है, और उसका नाम है 'कर्तव्य'। उन्होंने सदैव कर्तव्य को परधान समझा। जीवन भर कर्तव्य के रास्ते से जौ भर भी नहीं हटे। कर्तव्य के लिए चौदह वर्ष तक जंगलों में रहे, अपनी जान से प्यारी पत्नी को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया और अन्त में अपने पिरयतम भाई लक्ष्मण से भी हाथ धोया। परेम, पक्षपात और शील को कभी कर्तव्य के मार्ग में नहीं आने दिया। यह उनकी कर्तव्यपरायणता का परसाद है कि सारा भारत देश उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है। इसी कर्तव्यपरायणता ने उन्हें आदमियों के समूह से उठाकर देवताओं के समकक्ष बैठा दिया। यहां तक कि आज निन्यानवे परतिशत हिन्दू उन्हें आराध्य और ईश्वर का अवतार समझते हैं।

लड़को ! तुम भी कर्तव्य को परधान समझो। कर्तव्य से कभी मुंह न मोड़ो। यह रास्ता बड़ा कठिन है। कर्तव्य पूरा करने में तुम्हें बड़ीबड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा; किन्तु कर्तव्य पूरा करने के बाद तुम्हें जो परसन्नता पराप्त होगी, वह तुम्हारा पुरस्कार होगा।

>>पीछे>>



[शीर्ष पर जाएँ](#)